Chap-9

## नवम अध्याय

# डा० भारती का निबंध, समीक्षा एवं अनूदित साहित्य

## नवम अध्याय

## डा० भारती का निबंध,समीक्षा एवं अनुदित साहित्य

### निबंध साहित्य :

आज का निबंध साहित्य अपने विकासपथ में अपने संकुचित अर्थ की सीमाओं का अतिक्रमण करते हुए आगे बढ़ा है । डा० भोलानाथ ने आधुनिक निबंधों की इसी विकसनशील अर्थ-गरिमा की ओर दृष्टिपात करते हुए कहा है - 'निबंध के कुल मिलाकर दो अर्थ देखने में आते हैं - एक संकुचित और दूसरा विस्तृत । अपने संकुचित अर्थ में निबंध अंग्रेजी के पर्सनल एस्से के लिये प्रयुक्त होता है और इसी अर्थ में निबंध का प्रयोग होने लगे तो हिन्दी के बडे बडे लेखकों को निबंधकार पद से हटाना पडेगा । परन्तु सिद्धान्त: सही होने पर भी व्यवहार में 'निबंध' शब्द व्यापक अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है और उसकी परिधि में गद्यगीता संस्मरण, रिपोर्ताज से लेकर आलोचना, समाज में पढ़ा गया भाषण अथवा किसी पुस्तक में से कांट-छांट कर तैयार किये हुये परिच्छेद को भी स्थान दिया जाता है ।'[1]

डा० भारती ने अपने निबंधों के लिये 'पर्सनल एस्से' शब्द का प्रयोग किया है, किन्तु उक्त उद्धरण के आलोक में देखने पर उनके अधिकांश नि निबंध आधुनिक निबंध विधा के विकास में अपने विविधात्मक रूपों के द्योतक हैं । यहां इसी दृष्टि से उनके समग्र निबंध-साहित्य पर विचार किया गया है ।

### निबंधकार डा० भारती :

डा० भारती केवल भावुक कवि ही नहीं हैं, वे उच्च कोटि के सभा-सिद्ध वक्ता, उद्भट पत्रकार, प्रखर आलोचक एवं सशक्त निबंधकार भी हैं । स्वातंत्र्योत्तर

---

1- डा० भोलानाथ- हिन्दी साहित्य- पृ० 207

नाटक, कहानी और उपन्यास आदि सर्जनात्मक साहित्य की तरह निबंध और समीक्षात्मक लेखन के क्षेत्र में भी उनका विशिष्ट स्थान है।

उनके निबंधों का विषय समकालीन राजनीति, साहित्य, भाषा एवं लिपि, धर्म तथा संस्कृति के साथ ही राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय स्तर से उठने वाली अनेकानेक समस्याओं पर आधारित है । प्रायः अधिकांश निबंधों में विविधपक्षीय विषयों को साहित्य के संदर्भ में रखकर देखने-परखने का प्रयास दृष्टिगत होता है। साहित्य ही उनका प्रतिपाद्य है अतः वे जहां से भी अपने विषय को समकालीन ऐतिहासिक जीवन-सन्दर्भों से उठाते हैं उसका गठबन्धन साहित्य से कर देते हैं।

निबंधकार डा० भारती ने तथाकथित समस्याओं को मानवीय दृष्टिकोण से देखने-परखते हुए उनके स्थायी समाधानों की ओर भी दृष्टि-संकेत किया है। आज के संदर्भ में स्थापित मान्यताएं कहां तक सार्थकता पाती हैं उनका मानवीय मूल्यों के निकष पर गंभीर विश्लेषण एवं पुनर्मूल्यांकन करना ही उनके निबंधों का प्रमुख उद्देश्य है ताकि वर्तमानकालीन प्रचारित वक्तव्यों, सिद्धान्तों, स्थापित मान्यताओं एवं आदर्शों के मूल में सन्निहित मनोवृत्तियों के रुख को आज का नागरिक या पाठक भलीभांति समझ सके, और उसका अगला कदम गलत जमीन पर न पड़े। इस दृष्टि से अपने पाठकों की रुचि व संस्कारों का परिमार्जन करते हुए उन्हें मूल्यीय वस्तु को समझने की विवेकयुक्त दृष्टि निर्दिष्ट करना भी उनके निबंधों का प्रमुख उद्देश्य है।

निबंधकार डा० भारती ने आज के बौद्धिक एवं संकटापन्न संदर्भों में विघटित जीवन मूल्यों के अनास्थापरक वातावरण में भी आशावादी दृष्टिकोण के जरिये जीवन के कुछ ऐसे स्थायी मूल्यों को खोज निकालने की चेष्टा की है जिससे आज के बुनियादी सवालों की बाढ़ में बहते हुए हमारे जीवन को अपनी स्थिति रक्षा एवं

समुचित प्रगति के लिए कोई आलोक-स्तम्भ मिल सके। लेखक का कथन है "हर प्रलय के बाद अक्षय वट का एक छोटा पत्ता जरूर बच रहा है जिस पर नयी दृष्टि के बीज सुरक्षित रहे हैं।"[1] वस्तुत: तथाकथित तथ्य की ओर ही संकेत करता है। यही कारण है कि लेखक के अपने अधिकांश निबंधों में प्रवर्तमान समस्याओं के हल के लिये बाहरी व्यवस्थाओं को सुधारने की अपेक्षा सर्वप्रथम आत्मा के सुधार की आवश्यकता पर सर्वाधिक बल दिया है। लेखक का सर्वथा यह मत रहा है कि जीवन की ज्वलंत समस्याओं का हल अनशनों, व्रतों, आन्दोलनों, तथा जीवन-व्यवस्था के बाहरी ढांचे को बदलनेवाले सिद्धान्तों एवं खोखले आदर्शों से संभव नहीं। इसके लिये तो देश के अथवा विश्व के व्यक्ति को अपने आत्मा का संस्कार एवं परिमार्जन करते हुए अपना नवनिर्माण करना होगा।[2] इस दिशा में लेखक ने अध्यात्मवादी प्रगतिशील विचार-धारा का समर्थन तो किया ही है साथ साथ ही उसके द्वारा विश्व मानवता के स्तर पर एक विराट संस्कृतिक समन्वय की चेष्टा भी की है।

## उपलब्ध निबंध-साहित्य :

डा0 भारती का निबंध साहित्य अनेक रूपों में उपलब्ध होता है।
(क) सम्पादकीय लेखों के रूप में - 'आलोचना', (त्रैमासिक), 'निकष' (अर्द्धवार्षिक) तथा धर्मयुग (साप्ताहिक) जैसी पत्रिकाओं के सम्पादकीय लेख विशेष उल्लेखनीय हैं। डा0 भारती ने मुख्य सम्पादक के रूप में आलोचना अंक7 (अप्रैल 1953) से आलोचना अंक

---

1- कहानी अनकहनी- 'संकट और नया रास्ता', पृ0 135
2- 'अगर हमें अपने देश का सफल निर्माण करना है तो वह निर्माण अंदर से शुरू करना होगा। मनोवृत्तियों और भावनाओं को संस्कार देना होगा तभी बाहर का निर्माण भी सफल हो सकेगा।' (कहनी अनकहनी- 'प्रेमचंद ने कहा था' शीर्षक निबंध - पृ0 93

17 (जनवरी 1956) तक की 'आलोचना' पत्रिका का सफलतापूर्ण निर्वाह किया है। उक्त पत्रिकाओं में 'हिन्दी साहित्य का इतिहास : मध्ययुग', 'साहित्य की नई मर्यादा', 'साहित्यकार और उसका परिवेश', 'इतिहास का पुनर्नवीकरण', 'समकालीन उपन्यास : सीमाएं और सम्भावनाएं,' 'जनवादी साहित्य-1' तथा 'दायित्व और स्वातंत्र्य : अविच्छिन्न मूल्य' जैसे शीर्षक सम्पादकीय लेखों में डा० भारती की आधुनिक साहित्य को नये परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकित करनेवाली वैचारिक जागरूकता को देखा जा सकता है। इसी प्रकार 1955 से 1956 के एक वर्ष के काल तक 'निकष' पत्रिका के चार भाग उपलब्ध होते हैं। प्रस्तुत पत्रिका 'निकष' का प्रमुख उद्देश्य था प्रत्येक दल या शिविर में लिखे जानेवाले मानवीय मूल्य पर आधारित उच्च स्तर के साहित्य की परम्परा को गौरवशालिनी बनाना। इसी उद्देश्य से अभिभूत होकर डा० भारती ने अपने सम्पादकीय लिखे हैं। इनमें विभिन्न वर्ग के पाठकों के प्रति सम्बोधन का स्वर अधिक मुखरित हुआ है। प्रस्तुत पत्रिका इतनी लोकप्रिय रही कि जिसकी प्रतिक्रिया में उपेन्द्रनाथ 'अश्क' द्वारा सम्पादित 'संकेत' पत्रिका निकली।

वर्तमान पत्रिका 'धर्मयुग' में समकालीन समयचक्रों के अनुसंधान में तथा एक सम्पादकीय औपचारिकता के रूप में यथा-अवसर सम्पादकीय टिप्पणियां प्रकट होती रही हैं। अभिव्यक्ति-स्वातंत्र्य के अभियान में सम्पादक डा० भारती ने मानवीय अस्मिता के दीप को सदैव अपनी क्रान्तिकारी लेखनी के स्नेह से अक्षुण्ण रखा है, फिर चाहे उसकी दीप्ति साहित्यिक हो, राजनीतिक हो या जीवन के किसी पक्ष से सम्बंधित ही क्यों न हो। प्रस्तुत सम्पादकीयों में लेखक का व्यंग्य एवं आक्रोश तो कभी पाठक वर्ग के प्रति उद्बोधन एवं परामर्श का स्वर उद्घोषित हुआ है। यथा- 'कुछ बुद्धिजीवी होते हैं जो बहुत उत्सुक रहते हैं कि अपनी वैचारिक स्वतंत्रता को जल्दी से किसी सत्ता को समर्पित कर दें। उनका तर्क होता है कि स्वतंत्रता तो एक मानसिक विलास है, जनता को तो केवल रोटी चाहिए। इस तर्क

को जनवादी जामा पहनाकर वे वस्तुत: उस फासिज्म के हाथ मजबूत करते हैं, जो नहीं चाहता कि जन साधारण के कष्टों को वाणी मिले और उनके सही हालात सामने आयें। यह भी एक शब्द-छल है जिसका मुखौटा जनहित का होता है पर वास्तविक रूप होता है जन विरोधी फासिज्म-समर्थन का।`[1]

(ख) टीका- टिप्पणियों के रूप में :- `साहित्य कोश भाग-2, सं0 धीरेन्द्र वर्मा, तथा `आधुनिक परिवेश और अस्तित्ववाद ले0 डा0 शिवप्रसाद सिंह आदि में प्रकट डा0 भारती लिखित टिप्पणियों के दर्शन होते हैं।

(ग) विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकट होनेवाले डा0 भारती रचित निबंधों के रूपमें :-

इस दृष्टि से विशेषकर `कल्पना`, `हिन्दी नवनीत`, `माया`, `माधुरी`, `ज्ञानोदय`, `परिमल`, `आधार`, `आलोचना`, `प्रतीक`, `धर्मयुग` तथा `सारिका` जैसी पत्रिकाओं में समय-समय पर डा0 भारती के अनेक निबंध प्रकट होते रहे हैं। कुछ निबंधों को निम्नलिखित रूप से दर्शाया जा सकता है -

(1) कल्पना अंक, 43, 82, 91, 118, 141, 147 में क्रमश: `सिद्ध साहित्य के प्रतीकों का उद्गम`, `स्वतंत्रता के बाद हिन्दी गद्य-साहित्य`, `नाटकों में स्वगत भाषण (नव0 1958), `आधुनिकता का बोध(जन0 1961), `भाषा का प्रश्न और कुछ बुद्धिजीवियों का रूख : एक सर्वेक्षण` (जुलाई 1963) तथा `उर्वशी-समीक्षा : प्रतिक्रियाएं आदि जैसे साहित्यिक आलोचनात्मक निबंध हैं। इसी प्रकार `कल्पना -सितम्बर 1973 में `जन सम्पर्क माध्यमों में हिन्दी` डा0 भारती का भाषा सम्बंधी निबंध उपलब्ध होता है।

---

1- सं0 डा0 भारती `धर्मयुग`, रोमांचक स्वातंत्र्य विशेषांक 15 मई 1977

(2) आधार , मार्च, 1956 में प्रकाशित डा0 भारती कृत लेख 'प्रयोगवाद का मेरुदण्ड' (3) प्रतीक वर्ष तीन में डा0 देवराज उपाध्याय कृत उपन्यास 'पथ की खोज' पर आलोचनात्मक निबंध (4) सारिका मई 1976 'दुष्यंत विशेषांक' में डा0 भारती का दुष्यन्त पर लिखा गया निबंध मिलता है। (5) आलोचना-3, अप्रैल 1952 में बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' कृत 'अपलक' पर डा0 भारती का 'मूल्यांकन' शीर्षक लेख है। (6) विश्व-हिन्दी-दर्शन, 10 जनवरी 1975 में प्रकाशित डा0 भारती कृत लेख 'हिन्दी का सवाल : चरित्र का संकट', (7) माधुरी मई 1977 में 'हिन्दी साहित्य का दूसरा प्रेमचंद' डा0 भारती की 'रेणु' के निधन पर लिखी हुई एक टिप्पणी है। (8) माया - दीपावली अंक, नवम्बर 1976 तथा अप्रैल 1977 में क्रमश: उनके दो निबंध 'सूरज का सातवां घोड़ा की रचना-सृष्टि तथा 'मेरी कथा-यात्रा : सावित्री नम्बर दो' पढ़ने मिलते हैं। (9) तद्वत 'धर्मयुग 24 मार्च 1974, 23 अप्रैल 1977 तथा 21 मई 1977 में क्रमश: डा0 भारती कृत 'संप्रति, 'हिन्दी पत्रकारिता के डेढ़ वर्ष', 'एक कविता की उदास कहानी शीर्षक लेख दृष्टिगत होते हैं।

(घ) पुस्तकों की भूमिका के रूप में :- लेखक ने स्वयं अपनीकृतियों के सम्बंध में भूमिका की औपचारिकता के निमित्त अपने विचारों को अपने पाठकों के समक्ष प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से 'कनुप्रिया', 'ठण्डालोहा', 'अन्धायुग', 'चांद और टूटे हुए लोग', 'कहनी अनकहनी' तथा 'सूरज का सातवां घोड़ा' शीर्षक कृतियों की भूमिकाएं एवं निवेदन विशेष उल्लेखनीय हैं।

(ङ0) विभिन्न पुस्तकों तथा निबंध-संग्रहों में संकलित निबंध या लेखों के रूप में :- इस दृष्टि से 'अर्पित मेरी भावना' सं0 डा0 भारती तथा सहयोगी उपन्यास 'ग्यारह सपनों का देश' में डा0 भारती के साहित्यिक विचारों का निबन्धन स्पष्ट वक्तव्यों एवं मन्तव्यों के रूप में दृष्टिगत होता है।

(च) निबंध संग्रहों के रूप में :- इस दृष्टि से डा० भारती कृत निबंध संग्रह(1)कहनी-अनकहनी,(2) पश्यन्ती(3) ठेले पर हिमालय (4) युद्ध-यात्रा तथा(5) मुक्त क्षेत्रे : युद्ध क्षेत्रे:आदि श्रेष्ठ निबंध संग्रह हैं। इनमें से अंतिम दो अनुपलब्ध हैं।

कहनी अनकहनी (1970) :

इस संग्रह में पत्रकारिता की चुटीली शैली में लिखे गए कुल 45 टिप्पणीमूलक वैयक्तिक निबंध हैं। प्रस्तुत संग्रह के निबंध अपने स्पष्ट विश्लेषण, कथ्य की गहराई एवं मर्मभेदी दृष्टि के साथ ही एक चुहल भरी आत्मीय शैली की जिन्दादिली के कारण हिन्दी गद्य की एक मूल्यवान उपलब्धि के रूप में 'धर्मयुग' के लाखों पाठकों के बीच जीवन्त चर्चा के विषय रहे हैं।[1] भूमिका के अनुसार 'एक छोटी खबर : एक बड़ा संदर्भ' कमोवेश यह शीर्षक इन सभी निबंधों की प्रकृति को रूपायित करता है। समकालीन इतिहास-चक्र की कोई छोटी से छोटी घटना हो, सामान्य से सामान्य समाचार हो, लेकिन मानव-मूल्यों के निकष पर उसे भी कसा जा सकता है। और बहुत कुछ है जो उसके संदर्भ में कहा जा सकता है, बहुत कुछ जिसका स्थायी मूल्य है। यह लेखन उसी दिशा में एक प्रयोग रहा है।'[2]

विषय की दृष्टि से विविधता है। इनमें लेखक ने भाषा एवं साहित्यिक वाद-विवादों, सांस्कृतिक-साम्प्रदायिक समस्याओं तथा समकालीन राजनीतिक प्रश्नों को अपने गंभीर एवं विवेक सम्पन्न विश्लेषण विषय का आधार बनाया है।

---

1- कहनी अनकहनी- मुख पृष्ठ

2- वही-

पश्यन्ती :

प्रस्तुत संग्रह में डा० भारती के सन् 1961 से 67 बीच समय विशेष पर लिखे गये 17 विचारोत्तेजक निबंध हैं। संग्रह के निबंधों को आत्म कथ्य, व्यक्तित्व और कृतित्व, सर्वथा निजी, पश्यन्ती : इतिहास ; सर्वेक्षण ; युगबोध, और चिकनी सतहें : बहते आन्दोलन जैसे शीर्षकात्मक खण्डों में विभाजित किया गया है। इसके निबंधों में नवलेखन की समस्याओं के साथ ही राजनीतिक प्रश्नों पर निबंधकार ने गंभीरतापूर्वक दृष्टिपात किया है। इस दृष्टि से ये निबंध विचारात्मक या विश्लेषण प्रधान हो गए हैं इसके साथ ही लेखक को जहां कहीं अपने वैयक्तिक संस्मरणों को पुनर्जीवित करने का अवसर मिला है वहां व्यंग्य, हास्य एवं आत्मीयता पूर्ण सरस शैली उभर आई है।

ठेले पर हिमालय :

यह विविध प्रकार के निबंध रूपों पर आधारित निबंधों का संग्रह है। इसमें यात्रा-विवरण, डायरी, पत्र, रेखा-शब्द या शब्द-चित्र, कैरीकेचर, इण्टरव्यू, और व्यंग्य मूलक 32 निबंध संकलित हैं। पाठक लेखक की अत्यन्त चिन्तनपूर्ण सौंदर्य-दृष्टि की बारीकी पर ठगे सा रह जाता है। तीखे और मीठे प्रहारों से युक्त चमत्कारपूर्ण शैली इन निबंधों में सर्वत्र परिलक्षित होती है।

'युद्ध-यात्रा' और 'मुक्त क्षेत्रे : युद्ध क्षेत्रे' नामीय संग्रहों में सन् 1971 के अन्तर्गत बंगाल और पाकिस्तान के बीच होनेवाले भयंकर युद्धों का लेखक द्वारा पत्रकारिता की साहस एवं ओजस्वितापूर्ण शैली में लिखी गई आंखों देखी घटनाओं का अत्यन्त सजीव एवं रोमांचक वर्णन किया गया है। साथ इनमें बंगला वासी जन-जीवन की विविध झांकियों, उनके खट्टे-मीठे अनुभवों के बीच लेखक के भोगे हुये सत्यों को भी आत्मीयतापूर्ण शैली में अंकित किया गया है।

सर्वप्रथम प्रस्तुत निबंध 'धर्मयुग' में 'मुक्ति बाहिनी के साथ एक दिन (युद्ध : यात्रा-1), 'ठिठुरन और भटकन भरा एक सर्द अन्तराल(युद्ध यात्रा-2), 'युद्ध ब्रह्मपुत्र का : मोर्चे बन्दी' (युद्ध यात्रा-3) तथा 'युद्ध ब्रह्मपुत्र का : आधी रात का हमला' (युद्ध यात्रा-5), तथा 'ब्रह्मपुत्र पर सेतुबंध (युद्ध यात्रा-6) शीर्षक निबंध प्रकट हुए हैं। प्रस्तुत युद्ध-रिपोर्ताजपरक निबंधों में डा0 भारती ने मृत्यु की अनिवार्य छाया में रहकर भारतीय सेना और मुक्तिबाहिनी की अद्भुत शौर्य गाथा को स्वर प्रदान किया है।[1]

इसी प्रकार 'मुक्त क्षेत्रे युद्ध क्षेत्रे' शीर्षकान्तर्गत चार किस्तों में डा0 भारती ने बंगला देश के मुक्त क्षेत्रों और मुक्ति-संग्राम की प्रत्यक्षदर्शी घटनाओं का विवरण प्रस्तुत किया है। लेखक ने इनमें तेतुलिया बाजार की खरीद-फरोख्त, कचहरी की चहल-पहल, डिस्पेन्सरी, अस्पताल और थाने की दर्दनाक कहानियों के साथ ही तेतुलिया कस्बे के मुक्त और स्वाधीन जन-जीवन का ब्यौरा अत्यन्त प्रांजल शैली में अंकित किया है।[2]

## निबंधों का वर्गीकरण :

डा0 दशरथ ओझा जी ने हिन्दी साहित्य में उपलब्ध निबंधों को विषय विविधता तथा वर्णन शैली की भिन्नता को दृष्टिगत करते हुये प्रमुखतया दो भागों में विभक्त किया है।

(1) परिबद्ध निबंध(आब्जेक्टिव ऐस्से) या विषय निष्ठ तथा(2) निर्बन्ध निबंध (सब्जेक्टिव ऐसे एस्से) या विषयी निष्ठ।[3]

---

1- दे0 धर्मयुग, 2 जन0 1972, 16 जन0 1972, 23 जन0 1972, 30जन0 1972, 6फरवरी 1972 तथा 13 फरवरी 1972।

2- दे0 वही- 17 अक्टूबर 1971, 24 अक्टूबर 1971, 31 अक्टूबर 1972, व 7 नव0 71

3- डा0 दशरथ ओझा- समीक्षा शास्त्र- पृ0 183

डा0 जयनाथ नलिन जी ने आज के निबंधों के निम्नलिखित प्रकार निश्चित किये हैं -

| | |
|---|---|
| परात्मक (आब्जेक्टिव) | वर्णनात्मक |
| | विवरणात्मक |
| | विचारात्मक(रिफ्लेक्टिव) |
| विजात्मक (सब्जेक्टिव) | भावात्मक(इमोशनल) |
| | आत्मपरक या वैयक्तिक(पर्सनल) [1] |

डा0 रामगोपाल सिंह चौहान ने वैज्ञानिक दृष्टि से निबंधों के दो ही भेद स्वीकृत किये हैं (1) भावात्मक निबंध तथा (2) विवेचनात्मक या विचारात्मक निबंध।[2] डा0 विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने विषय और शैली के आधार पर निबंधों, को(1)विचारात्मक (2) भावात्मक(3) कथात्मक (4) वर्णनात्मक(5) आत्मपरक तथा (6) हास्य-व्यंग्यात्मक प्रधान वर्गों में विभाजित किया है।[3]

उपर्युक्त निबंधों के वर्गीकरण की सारणियों से यह स्पष्ट हो जाता है कि निबंध साहित्य का कोई एक सुनिश्चित वर्गीकरण आज की स्थितियों में संभव नहीं है। वस्तुत: विषय एवं शैली की दृष्टि से निबंधों के वर्गीकरण की सीमाओं का कोई अंत नहीं है, किन्तु वस्तु तात्त्विक दृष्टि से परात्मक निबंध तथा विजात्मक निबंध जैसे दो भेद ही अध्ययन की सुविधा के लिये समीचीन ठहरते हैं। शैलीगत विभिन्नता पर आधारित

---

1- डा0 जयनाथ नलिन -हिन्दी निबंधकार- पृ0 18

2- डा0 रामगोपाल सिंह चौहान- आधुनिक हिन्दी साहित्य - पृ0 315

3- डा0 विश्वनाथ तिवारी- छायावादोत्तर हिन्दी का गद्य-साहित्य पृ0 195

निबंध भी अंतत: किसी न किसी रूप में उक्त दोनों ही प्रकार के निबंधों की सीमा में समाहित हो जाते हैं तो कहीं "एक ही विषय पर लिखा गया निबंध विचारात्मक भी होगा, भावात्मक भी होगा, आत्मव्यंजक, वर्णनात्मक, कथात्मक भी हो सकता है।"[1]

अत: यहां पूर्व निर्दिष्ट दृष्टि से ही डा0 भारती के निबंधों का वर्गीकरण अपेक्षित होगा।

## विचार प्रधान अथवा विषय निष्ठ (आब्जेक्टिव) निबंध :

विषय प्रधान निबंधों में विषय को ही सर्वाधिक महत्व दिया जाने के कारण इसमें लेखक के निजी गुणों या आत्म प्रकाशन के लिए अपेक्षाकृत बहुत कम ही स्थान रहता है। इस प्रकार के निबंधों का मुख्य आधार विचार या चिन्तन है। बुद्धि जब तथ्यों या समस्याओं का उद्घाटन विवेचन, विश्लेषण तथा न्याय संगत तर्क के माध्यम से प्रस्तुत करती है तब इस प्रकार के निबंधों को प्राय: विचार प्रधान निबंध कहा जाता है।

डा0 भारती का अधिकांश निबंध-साहित्य प्राय: विचारात्मक कोटि का है। ऐसे निबंधों में विचारों के द्वारा समकालीन जीवन-जगत् से सम्बंधित अनेक विध समस्याओं और प्रश्नों का तर्क सम्मत विश्लेषण किया जाने के कारण इनकी प्रकृति आलोचनात्मक हो गई है, साथ ही ऐसे निबंधों में समस्याओं के समाधानों का प्रबलतर स्वर मुखरित हो पाने के कारण इन्हें समस्यामूलक निबंध भी कहा जा सकता है।

इस प्रकार के निबंधों में प्रबुद्ध एवं जागरूक निबंधकार डा0 भारती के राजनीतिक चिंतन, दायित्वचेता साहित्यकार, समाज सुधारक, और सांस्कृतिक एकता के साधक का रूप स्पष्ट परिलक्षित होता है।

---

1- डा0 मु0 ब0 शहा, "हिन्दी के निबंधों का शैलीगत अध्ययन- पृ0 28

इस कोटि के निबंधों में लेखक की गंभीर विवेचन की दृष्टि-प्रखरता, जटिल विषयों की सूक्ष्म पकड़, सूझ-बूझ, मौलिक विचारों की निर्भीक अभिव्यक्ति तथा मानवता के उद्धार के लिए उनके नवीन दृष्टिकोणों की स्थापना के मूल में क्रान्तिकारी तथा क्रान्त दृष्टा डा० भारती को सहज ही दृष्टिगत किया जा सकता है।

उनके विचारात्मक निबंधों को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से निम्नस्थ रूप से विभाजित किया जा सकता है।

(1) राजनीतिक विषय मूलक निबंध
(2) साहित्यिक विषय मूलक निबंध
(3) सांस्कृतिक विडम्बना एवं मानवतावादी विचारधारा मूलक निबंध।

राजनीतिक विषयमूलक निबंध :

कहना न होगा कि आज राष्ट्र, राष्ट्र की सीमाएं, उसकी स्वतंत्रता, संस्कृति, साहित्य , शिक्षा , व्यक्ति एवं समाज आदि सभी पर राजनीति का व्यापक प्रभाव पड़ा है। इस स्थिति में लेखक का दायित्व भी आज अधिक दुहरा एवं जटिलतर बनता जा रहा है। अतः उसके एक ही प्रकार के विषय के निबंध में भी विविध प्रकार के स्वरों की अभिव्यक्ति दृष्टिगत होती है। डा० भारती जी भी उक्त तथ्य के अपवाद नहीं हैं। उन्होंने सांस्कृतिक विनिमय तथा तद्जनित बिडम्बनाओं को राजनीति से आबद्ध करके देखने का प्रयास किया है।

उनके राजनीतिमूलक निबंधों में समकालीन राजनीतिक परिस्थितियों, समस्याओं, उसकी विकृतियों व दुष्परिणामों, नेताओं की आदर्शहीनता उनकी पद लोलुपता एवं वोट संग्राहक वृत्तियों-अनाचारों के साथ ही विदेशी राजनीतिक सत्ताओं की तानाशाही तथा उसकी अराजकतावादी अमानुषिक नीतियों पर कटु प्रहार किया गया है। निबंधकार ने दलीय स्वार्थनिहित संकीर्णतावादी राजनीतिक दृष्टिकोणों का सर्वथा अपने निबंधों में

विरोध करते हुए मानवतावादी राजनीतिक विचारधाराओं को ही प्रश्रय दिया है। इस दृष्टि से निबंध संग्रह 'कहनी अनकहनी' के 'ये ठग हटें तो मुसाफिर को रास्ता मिल जाय', 'विकासोन्मुख व्यवस्था : ह्रासोन्मुख आत्मीयता', 'वसंती समाचार' 'जहां प्रशासकों और न्यायधीशों का निर्माण होता है', 'शव हटाने के बाद', 'बेचने का फलसफा' शीर्षक निबंध विशेष उल्लेखनीय हैं। लेखक ने तात्कालीक राजनीतिक समाधानों को राजनीतिक दिवालियापन सिद्ध करते हुए इस बात की जरूरत पर सर्वाधिक बल दिया है कि 'हम बुनियादी तौर पर समस्याओं को जांचें और सच्चे आदर्शों के आधार पर सभ्यता को साहसपूर्वक नया मोड दें--- 'देश और दल, राजनीति और धर्म की सीमाओं से परे यूरोप, अमेरिका, एशिया, अफ्रीका में जहां जो भी पैनी दृष्टियां उभर रही हैं, जहां जो भी निर्भीक आवाजें उठ रही हैं, जो राजनीति की तात्कालिक कसौटी नहीं वरन् इन्सानियत के विकास की कसौटी पर सारी तात्कालिक राजनीति को जांचना चाहती हैं - उनको वास्तविक ताकत मिले।'[1] रागात्मक एकता की भावना पर आधारित तथाकथित राजनीति को लेखक ने 'बसंती समाचार' शीर्षक निबंध में बडे प्रतीकात्मक रूप से समर्थित करते हुए कहा है - 'किसी की लालिमा है, जो तमाम राजनीति और व्यापार से ज्यादा बड़ी चीज है और हर साल उसकी याद दिलाने आता है।'[2]

लेखक ने नेकी, ममता, आत्मत्याग, आत्मीयता और दिल की सच्चाई को नेताओं के भाषणों तथा अनेकानेक धर्मों, मजहबों एवं राजनीतियों से अधिक श्रेष्ठ माना है। इस दृष्टि से 'कहनी अनकहनी के 'काबा और दरवेश के पांव' तथा 'एक छोटी खबर : एक बड़ा संदर्भ' शीर्षक निबंध विशेष उल्लेखनीय हैं।

---

1- कहनी अनकहनी (प्र0 सं0 1970) 'बेचने का फलसफा' शीर्षक निबंध-पृ0 114, 115

2- कहनी अनकहनी- पृ0 31

मानसरोवर और दिल्ली के हंस, 'हाय हाथी ! हाय ! , 'मधुमक्खियों से सबक विश्वविद्यालयों के लिए' विशेषण' तथा 'शब्द बदले प्रकाश' में शीर्षक निबंधों में लेखक का राजनीतिक व्यंग्य राजनीतिक कमजोरियों, उसकी असंतुलित व्यवस्थाओं एवं विकृतियों पर किया गया है।[1]

राजनीतिक छद्मों को भी लेखक ने अपनी सूक्ष्म एवं दीर्घ दृष्टि से अनावृत्त किया है। इस दृष्टि से 'पश्यन्ती' निबंध संग्रह के 'चीनी आक्रमण के तुरन्त पूर्व का भारत' 'एशियायी आधुनिकता और हुलाहूल', 'तलाश ईश्वर की : बजरिये अफीम' और 'अराजनीति की राजनीति' शीर्षक निबंधों को देखा जा सकता है। लेखक के अनुसार आज सद्‌चिंतन गौण और चन्द खूब सूरत नारे प्रधान होते जा रहे हैं। नारों ने दर्शन और विचारों का स्थान ले लिया है फलत: आज राजनीतिक जीवन एवं व्यक्तित्व में खोखलापन घर कर गया है। लेखक ने इसके लिए 'गांधीयुग' और 'नेहरुयुग' से दो प्रसिद्ध शब्दों को तुलनात्मक राजनीतिक दृष्टि से विश्लेषित करते हुए स्पष्ट कहा है कि उदाहरण के लिए दो शब्द ले लें। एक गांधी युग में प्रचलित हुआ और एक नेहरु युग में प्रतिष्ठित किया गया। एक था 'सत्याग्रह' दूसरा है 'पंचशील'। एक ने देश के एक-एक व्यक्ति में एक निष्ठा जगायी, उसे इतिहास की एक जागरूक, दायित्व-युक्त इकाई के रूप में सार्थकता प्रदान की। उस शब्द के पीछे एक अर्थ की गरिमा थी जो संकल्पयुक्त आचरण से समर्थित थी - ऐसा आचरण जो गलत और सिद्धान्तहीन समझौते करने के लिए तैयार नहीं था। ----दूसरा शब्द प्राचीन शास्त्रों में से चुना गया और एक राजनीतिक समझौते के बाद प्रचलित होने लगा। नि:सन्देह उसके पीछे समग्र मानव-जाति के लिए एक सदिच्छा, उदार सहिष्णुता और एक प्राचीन तप:पूत परम्परा की पृष्ठभूमि थी, सदाकांक्षा थी। लेकिन कहीं पर कोई कमी थी, कहीं पर सत्य के प्रति कोई आग्रह जरूर अनुपस्थित था और नतीजा यह हुआ कि पंचशील एक अजब सा अर्थ

---

1- कहनी अनकहनी -

लेता गया। तिब्बत में बर्बर चीनी आक्रमण होता रहा, हंगरी में हंगरीवासियों की स्वाधीनता का अपहरण होता रहा और पंचशील के बड़े-बड़े वक्तव्य खूबसूरत नीले फूलों वाली लतरें बनते गये जो एक कुरूपता की बहती हुई पंक-धारा को ढंकते जायें।'[1]

लेखक ने राष्ट्र-निर्माण की आवश्यकता पर विशेष बल दिया है। उसके मतानुसार राष्ट्र निर्माण की असली नींव वह है जो इन्सानी रिश्तोंवाली आत्मीयता और जो जनता के मन में सुरक्षा, आश्वासन और मिठास के भाव पैदा करती है।[2] निबंधकार डा० भारती ने राष्ट्र-निर्माण की मुख्यत: दो शक्तियां निर्दिष्ट की है एक उसके बाह्य स्वरूप को बनानेवाली शासक सत्ता की शक्ति और दूसरी उसके मन का निर्माण करनेवाली बुद्धिजीवी, चिन्तक और मनीषि की वैचारिक शक्ति। वे राष्ट्रीय चरित्र के सफलता पूर्ण निर्माण के हेतु न केवल राजनेताओं, और बुद्धिजीवियों को ही दायित्वपूर्ण मानते हैं वरन् देश के एक साधारण से साधारण नागरिक का भी उतना ही दायित्व ज्ञापित करते हैं।[3]

उनके कतिपय निबंधों में राष्ट्रीय अखण्डता की भावना का स्वर प्रधान रूप से मुखरित हुआ है। वस्तुत: किसी भी राष्ट्र की अखण्डता उसकी भाषा, संस्कृति, कला, इतिहास और भू-भाग के अविभाज्य उपकरणों से ही अक्षुण्ण बनी रहती है। डा०भारती ने भी राष्ट्रीय अखण्डता में सहायक अविभाज्य एवं समन्वयमूलक सांस्कृतिक -राजनीतिक तत्वों को ही समर्थित किया है। इसीलिए वे भाषा, धर्म, जाति, संस्कृति, राजनीति या साहित्य सम्बंधी एकांगी दृष्टिकोणों को राष्ट्रीय प्रगति के लिए हितकर न मानकर समन्वयमूलक रास्ता अपनाते हैं। इस दृष्टि से 'तरक्की का तर्क या तर्क-तरक्की'

---

1- पश्यन्ती (द्वि०सं० 1972), 'चीनी आक्रमण के तुरन्त पूर्व का भारत --निबंध-पृ० 102-103

2- कहनी अनकहनी- पृ० 25

3- वही- पृ० 34

'टी0 दास और पशु-प्रदर्शनी', 'ये ठग हटें तो मुसाफिर को रास्ता मिल जाय' जैसे कहनी अनकहनी' निबंध-संग्रह के निबंध उदाहरणीय हैं। लेखक ने तथाकथित समन्वयमूलक राष्ट्रीय एकता की साधक राजनीति की ओर दृष्टिपात करते हुए यह घोषित किया है कि राजनीति अगर स्थायी समाधान खोजने का प्रयास नहीं करेगी और अकुशल डाक्टर की तरह सिर्फ ऊपरी लक्षण दबाने की चेष्टा करेगी तो विकृतियाँ नये-नये रूप में पनपेंगी। ---तात्कालिक व्यवस्था के लिए दमन और दण्ड जरूरी हो लेकिन स्थायी विकास के लिए हर मजहब, हर भाषा, हर सूबा और हर वर्ग के लोगों के मन को भय-मुक्त, आत्मविश्वासी और आश्वस्त बनाना ज्यादा बड़ा और ज्यादा सही काम है? क्या उसकी ओर भी हमारा उतना ध्यान है?"[1]

(2) साहित्यिक विषय मूलक निबंध :

डा0 भारती ने अपने साहित्यिक निबंधों में भाषा, लिपि एवं साहित्य सम्बंधी अनेक जटिलतर समस्याओं का मूल कारण प्रवत्तमान राजनीतिक दलीय स्वार्थों, प्रांतीय मतभेदों तथा विभिन्न मजहबों की संकीर्णतावादी विचारधाराओं को ही माना है।

आज यह सत्य सर्वविदित है कि किस प्रकार राजनीतिक सत्ता ने साहित्य को अपने अधीनस्थ करते हुए उसकी स्वस्थ प्रगति के पथ को अवरुद्ध कर दिया है। प्रस्तुत तथ्य को लेखक ने अपने 'भारतीय साहित्य जगत् में हिन्दी लेखक', 'अराजनीति की राजनीति' 'भाषा का प्रश्न और कुछ बुद्धिजीवियों का रुख'[2] तथा 'ठेले पर हिमालय' निबंध संग्रह के 'राज्य और रंगमंच' तथा 'होना और करना' शीर्षक जैसे निबंधों में

---

1- वही- पृ0 21

2- दे0 पश्यन्ती के 'सर्वेक्षण' स्तम्भ के निबंध-

सशक्त एवं निर्भीक अभिव्यक्ति प्रदान की है। आज एक व्यापक स्तर पर रचनात्मक लेखन क्यों उपेक्षित हो रहा है, इसका मूल कारण लेखक की दृष्टि से छिपा नहीं है। इसके लिए लेखक ने सरकारी संरक्षण की उस स्वार्थीय नीति को जवाबदार माना है जो उसके सम्पर्क में आनेवाले लेखकों, पत्र-पत्रिकाओं, साहित्य-सम्मेलनों तथा संस्थाओं को ही प्रश्रय देती है।[1]

स्वतंत्रता पश्चात् राजनीति साहित्य पर अनेक माध्यमों से हावी हो गई है, कहीं वाद के नाम पर, कहीं जाति के नाम पर, कहीं जाति की श्रेष्ठता के नाम पर, तो कहीं किसी बहाने, इस बात को लेखक ने 'अराजनीति की राजनीति' शीर्षक निबंध में बड़े स्पष्टरूप से व्यक्त किया है।

निबंधकार डा0 भारती ने अपने कतिपय निबंधों में नये साहित्यकारों को आज के राष्ट्रव्यापी संकट के युग में अपने विवेकोचित दायित्व से प्रतिबद्ध रहकर साहित्य में मध्ययुग के दिव्यात्मावादी नायकों के विरुद्ध जन-साधारण वर्ग की भावनाओं का उत्साहपूर्वक प्रतिनिधित्व करने की आवश्यकता के प्रति सजग किया है। लेखक ने स्पष्टत: कहा है 'साहित्यकार जब तक दिव्यात्मा का नेता होने का दम्भ करता रहेगा तब तक उसे चाहे 'अष्ट सिद्धि नव ऋध्दि' मिल जाये लेकिन मानवीय यथार्थ की झलक तो नहीं मिल सकती। वह तो उसे तभी मिलेगी जब वह सारे लबादे फेंककर प्रजा के साथ आ खड़ा होगा, साधारण जन छोटे परिवेश में अपनी असंगतियों से संघर्ष करते हुए छोटे आदमी से अपनापन स्थापित करेगा, उसी की नियति को अपनी नियति मानेगा, उसी के प्रति अपने दायित्व का अनुभव करेगा।'[2] 'ठेले पर हिमालय' निबंध संग्रह का 'पुरानी प्रतिमाएं : नये प्रतिमान' शीर्षक निबंध में भी तथाकथित जनोन्मुख दायित्व-भावना से प्रतिबद्ध साहित्य को ही श्रेष्ठ माना है।

---

1- वही- भारतीय साहित्य जगत में हिन्दी लेखक' शीर्षक निबंध-

2- ठेले पर हिमालय- (द्वि0 सं0 1970) होना और करना शीर्षक निबंध-पृ0 79

निबंधकार डा0 भारती ने साहित्य के नाम पर प्रचलित होनेवाली बीटनिक कलाकारों की मानव-विरोधी अश्लिल प्रवृत्तियों की भर्त्सना की है[1] कहीं तथाकथित उन समीक्षकों को गलत कदमों को आगे बढ़ने से रोकते हैं कि जो स्वमत सापेक्ष-सिद्धान्तों की राजनीति के चश्मे से ही साहित्य को देखने-परखने का प्रयास करते हैं। 'अनास्था' तथा 'हिन्दी नाट्य-लेखक : कुछ समस्याएं' शीर्षक निबंधों में लेखक ने तथाकथित समीक्षा पद्धति पर कटु प्रहार किया है।

निबंधकार डा0 भारती ने साहित्यकार को दलगत राजनीति से मुक्त रहकर प्राय: अपने व्यक्तित्व, अपने परिवेश, अपने समुदाय और अपने समाज से ज्यादा गहरे स्तर पर सम्पृक्त रहकर साहित्य-सृजन करने का परामर्श दिया है। वे साहित्य के महानतम दायित्व एवं उसके महत्व पर प्रकाश डालते हुए यह घोषणा करते हैं कि - 'साहित्य का महत्व राजनीति, विज्ञान और दर्शन की अपेक्षा अधिक है। ---साहित्य जिस भाव स्तर पर मानवीयता को ग्रहण करने का प्रयास करता है वह मनुष्य की आन्तरिकता को पुन: प्रतिष्ठित करने में सर्वाधिक सहायक होता है, वह आन्तरिकता जो मूल्यों की खोज करती है, संकल्प-शक्ति को जागृत करती है, संस्कृति की आन्तरिक रुग्णता को दूर कर सकती है और मानवीय नियति के साक्षात्कार में सहायक होती है। वही तत्व है जिसने सदा मनुष्य को पशु या यंत्रों से पृथक एक सार्थक मूल्यवान अस्तित्व दिया है।[2]

डा0 भारती ने कुछ निबंध कृति एवं कृतिकारों पर लिखे हैं ऐसे निबंधों में व्यावहारिक समीक्षा-शैली अधिक उभर कर आई है। 'पश्यन्ती' के 'आत्मकथ्य' एवं

---

1- 'पश्यन्ती-'तलाश ईश्वर की : बजरिये अफीम' शीर्षक निबंध -

2- पश्यन्ती - 'आधुनिकता अर्थात् संकट का बोध- पृ0 162

व्यक्तित्व और कृतित्व' शीर्षकान्तर्गत लिखे गये निबंधों के अतिरिक्त विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं के लिए लिखे गये साहित्य-विषयक निबंध ऐसे ही निबंध हैं।

लेखक ने साहित्यिक समस्याओं के साथ-साथ ही राष्ट्र की भाषा एवं उसकी लिपि के स्तर से उठने वाली संकटापन्न समस्याओं पर भी दृष्टि-निक्षेप किया है। भाषा एवं लिपि विषयक उनके विचार तटस्थ तथा संतुलित हैं। उक्त मामले में उनकी दृष्टि कहीं भी संकीर्ण तथा स्वार्थपरक विचारों की पोषक नहीं है। भाषा व लिपि के नाम पर झगड़ा खड़ा करनेवाले संकीर्णतावादी लोगों की दृष्टि का परिष्कार करते हुए उनका यह कथन है कि 'जिन लोगों ने भी यह सोचा हो कि उर्दू हमारी नहीं बल्कि पाकिस्तान की भाषा है, वे न सिर्फ गलत थे बल्कि अपनी राष्ट्रीय सांस्कृतिक सम्पत्ति के एक बहुत बड़े हीरे को गंवाने के लिए तैयार थे। यह बात पूरे जोर से कही जानी चाहिए कि हिन्दी भाषा की जो भी शैलियां अवध, ब्रज, कुरु, भोजपुर और बुन्देलखण्ड में पनपीं उन सब शैलियों में उर्दू का एक बहुत महत्वपूर्ण स्थान है।'[1] 'सत्याग्रह की अंग्रेजी क्या है?'[2] शीर्षक निबंध में वे देशी भाषाओं के समन्वय को राष्ट्र की सांस्कृतिक एकता के लिए अत्यावश्यक मानते हैं 'हमारे देश की आत्मा जिस लम्बे और बहुपक्षी इतिहास, विराट समन्वय और आध्यात्मिक खोज को अपने में समाहित किये हुये है, उसकी विविध अनुभूतियों की अभिव्यक्ति उन्हीं भाषाओं के शब्दों से हो सकती है जो हमारे देश की है। नये शब्द भी उन्हीं शब्दों के आधार पर बनाये जा सकते हैं। विदेश से उधार लिये गये शब्द बहुत से संदर्भों में झूठे और यथेष्ट साबित होंगे।'[3]

लेखक ने राष्ट्र की सम्यक् उन्नति के लिए एक राष्ट्र भाषा हिन्दी एवं एक

---

1- कहनी अनकहनी- 'उर्दूवाले और फील्ड मार्शल का मजाक'- पृ0 61

2- दे0 कहनी अनकहनी- नि0 सं0

3- वही- नि0 सं0

लिपि देवनागरी के महत्व को एक विराट सांस्कृतिक समन्वय एवं राष्ट्र की भावात्मक एकता के स्तर पर समझने-समझाने का रुख अपनाया है। इस स्तर पर वे अंग्रेजी भाषा के हिमायती तथाकथित नेताओं तथा देश के शिक्षित किन्तु विवेकहीन नागरिकों पर व्यंग्य-वर्षा करते हुए दृष्टिगत होते हैं। इस दृष्टि से 'कहनी अनकहनी' निबंध संग्रह के 'टी० दास और पशु-प्रदर्शनी', आयी-आयी बम्बईवाली(बरसात), 'अंग्रेजी भी बनाम अंग्रेजी ही', 'जब जब बोले राजा जी' तथा 'आगन्तुक पखेरु' शीर्षक निबंध विशेष उल्लेखनीय हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् देश के नागरिकों में अंग्रेजी के प्रति किस प्रकार भ्रमपूर्ण धारणा है और उसके परिणामस्वरूप देशी भाषाओं की क्या स्थिति है, इस बात को लेखक ने स्पष्ट करते हुए कहा है - 'वह धारणा यह थी कि देशी भाषाओं के विकास के साथ अनिवार्यत: 'गांव की गंवार' जेहनियत जुड़ी हुई है। धोती-कुरता की जेहनियत। अंग्रेजी भाषा बोलने और लिखने से नागरिक जेहनियत का विकास होता है, अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण बनता है, आदि आदि।'[1]

(3) सांस्कृतिक विडम्बना एवं मानवतावादी विचारधारा मूलक निबंध :

किसी भी देश की संस्कृति के निर्माण के पीछे उसके जातिगत संस्कार, विचार, नीति, दर्शन, कला, साहित्य, धर्म, शिक्षा-पद्धति, भाषा एवं इतिहास आदि की परम्पराओं का हाथ रहा करता है। भारतीय संस्कृति मूलत: अध्यात्म प्रधान है यही कारण है कि वह जीवन से अर्थ और काम की भावना को नितांत उपेक्षित तो नहीं समझती किन्तु वेदशास्त्र विहित धर्म-रीति से ही उन्हें उपभोग्य समझती है। इस दृष्टि से अंततोगत्वा वह आध्यात्मिकता के साथ भौतिकता के तत्वों का भी समन्वय कर लेती है। यह कहना अत्यावश्यक होगा कि भारतीय संस्कृति विश्व मानवतावाद की शाश्वत् विचारधारा से अनुप्राणित है।

---

1- वही- 'टी० दास और पशु-प्रदर्शनी' निबंध- पृ० 40

आज पाश्चात्य संस्कृति, औद्योगिक विकासों, यातायात के बहुपक्षीय साधनों, तथा वैश्विक स्तर से उठनेवाली अनेकाविध राजनैतिक विडम्बनाओं के कारण देश में सांस्कृतिक विघटन एवं नैतिक पतन की प्रक्रिया तीव्रतर होती चली है भौतिकता का विशालकाय दैत्य चारों ओर से मानवता की हत्या करता जा रहा है।

डा0 भारती जी ने अपने निबंधों में राष्ट्र के सांस्कृतिक विघटन एवं उसके नैतिक पतन की अनेक रूपों से चर्चा की है। सांस्कृतिक एकता एवं मानवीय मूल्यों की सुरक्षा के अभाव में आज विश्व-मानवता का विकास संभव नहीं है। इसका निराकरण न विज्ञान के पास है और न विविध राजनीतिक मतवादों, सम्प्रदाय और मजहबों के पास ही मानवीय एकता का जैसा प्रयास बिना किसी भेद भाव के संगीतज्ञ तानसेन ने अपनी उदात्त स्वर साधना के माध्यम से कियाथा आज विज्ञान उस दिशा में असफल ही रहा है - 'शब्दों या स्वरों से ज्ञान और प्रेम जगाने की ऐसी कल्पनाएं हर देश, हर सम्प्रदाय और हर संस्कृति में रही हैं। पूर्व में भी, पश्चिम में भी, हिन्दू में भी, मुसलमान में भी, श्रेष्ठ कैथोलिक सन्तों में भी और मानवीय समता के, उदात्त प्रचारकों में भी। आज अगर हम घृणा भरे शब्दों से उत्पन्न इस सत्ता की प्यासी, चतुर्दिक फैलती हुई आग को नहीं रोकते तो ये तमाम बड़े-बड़े सिद्धान्तों वाले शब्द और वैज्ञानिक चमत्कार एक मरती हुई संस्कृति के दर्दनाक खेल बनकर रह जायेंगे।'[1] उन्होंने साम्प्रदायिक झगड़ों तथा भाषा, सूबा, जाति-पांति और वेशभूषा के भेद भाव को नितान्त अर्थहीन मानकर मनुष्य की आन्तरिक सचाई को ही ईश्वर की सबसे बड़ी पूजा घोषित करनेवाले कबीर, नानक और शेख-फरीद जैसे सन्तों की मानवीय एकता के रागात्मक तत्वों पर आधारित पवित्र वैचारिक परम्परा को आज के सांस्कृतिक-राष्ट्रीय संकटों या विडम्बनाओं में किसी भी राष्ट्र की समुचित उन्नति के लिए ग्रहणीय माना है।[2] इसके अभाव में आज मानवता

---

1- वही- 'शब्द बदले प्रकाश में' - पृ0 81

2- वही- 'काबा और दरवेश के पांव'

के अस्तित्व की रक्षा का प्रश्न चतुर्दिक और भी एक गहरे संकट को आमंत्रित करता जा रहा है। 'कहनी अनकहनी' के 'आइसमैन को सजा लेकिन---' तथा 'शव हटाने के बाद' शीर्षक निबंधों में लेखक ने तथाकथित सत्य पर विस्तृतता से प्रकाश डाला है। इसी प्रकार उसी संग्रह के 'संकट और नया रास्ता' तथा 'एशियाई इतिहास और पश्चिमी फार्मूले' शीर्षक निबंधों में भी किस प्रकार पश्चिमी सभ्यता के अत्यधिक विकास ने और उसके राजनैतिक राक्षसी मुखों ने मनुष्य की आन्तरिक सम्पन्नता, सुख और समृद्धि को निगल लिया है, इस बात पर गंभीरतापूर्वक विचार करते हुए लेखक ने पुराणों की भाषा में मानवता की नई सृष्टि के लिए आशावादी कल्पना की है। लेखक के ही शब्दों में - 'लेकिन हमने यह पाया है कि ऐसे तमाम संकटों के बीच मनुष्य ने हार नहीं मानी है, न लेखक ने ही अपने को निरर्थक अनुभव किया है। जब बाहर से चारों तरफ व्यवस्था और मूल्यों में उथल-पुथल हो गयी है उस समय भी मन के अन्दर का कोई बहुत बड़ा विश्वास जागा है और साहित्य के रूप में, कला के रूप में, दर्शन के रूप में मनुष्य ने फिर वह बिन्दु खोजा है जिस पर वह निर्भीक अपना पांव जमा सके।'[1]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि डा० भारती के सांस्कृतिक विचार मानवता में एकता स्थापित करनेवाले समन्वयमूलक सर्वात्मवादी तत्वों पर अवलम्बित हैं।

## भाव प्रधान अथवा विषयीनिष्ट(सबजेक्टिव) निबंध :

भावात्मक निबंधों में विचारों की अपेक्षा हृदयस्पर्शी भावों एवं कल्पना के चारु तत्वों के साथ ही विषय की अपेक्षा विषयनिष्ठता या व्यक्तिगत जीवन के रागात्मक तत्वों की प्रधानता रहती है।

---

1- वही- 'संकट और नया रास्ता' - पृ0 134-135

स्वातंत्र्योत्तर निबंध साहित्य के अन्तर्गत भावात्मकता प्राय: शैली लालित्य के स्तर पर लेखक के व्यक्तिगत जीवनानुभवों के मार्मिक संस्पर्शों की निबंध्य अभिव्यक्ति के रूप में परिलक्षित होती है। इनमें लेखक के व्यक्तिगत जीवन की रागात्मक अनुभूतियों एवं कल्पनाओं का स्वतंत्रतया अंकन उपलब्ध होता है। हृदय-पक्ष की प्रधानता होने के कारण ही ऐसे निबंधों में विषयविष्ठता या वैयक्तिकता के गुणों के प्रकाशन के लिए अधिक गुंजाइश रहती है।

आज का संस्मरण, रेखा-चित्र, यात्रा, डायरी तथा पत्रमूलक निबंध साहित्य प्राय: भावना, कल्पना तथा शैली लालित्य पर आधारित होने के कारण निबंध-विधा के विविध रूपों के विकास का द्योतक है। डा० कुमार विमल ने तो ऐसे निबंधों में सहृदयता के द्वारा उद्भासित होनेवाली चिन्तनशीलता तथा गत्यात्मक तत्वों पर आधारित रेखा-चित्र, कथा, संस्मरण, यात्रा, व जीवनीपरक घटनात्मकता में अन्तर्निहित काव्यात्मक, अनौपचारिक भाव-क्रीड़ा की सृष्टि को देखकर उन्हें 'ललित निबंध' की संज्ञा से अभिहित किया है।'[1]

डा० भारती के भावात्मक तथा ललित प्रधान शैली में लिखे गये निबंध 'ठेले पर हिमालय' निबंध संग्रह में संकलित हैं। 'पश्यन्ती' निबंध संग्रह के कुछ निबंधों में भी भाव एवं कल्पना के तत्वों का तिलताण्डुल संयोग दृष्टिगत होता है। प्रस्तुत निबंधों में गद्य विधा के स्वतंत्र रूप से विकसित होनेवाले रेखा-चित्र, आत्मचरित्र(आत्म-कथ्य,आत्म-संस्मरण), यात्रा, रिपोर्ताज, पत्र, इण्टरव्यू तथा डायरीमूलक निबंध जैसे विविध रूपों की अभिव्यक्ति हुई है। इन निबंधों में विषय-वस्तु के प्रति लेखक की रागात्मक प्रतिक्रिया, उसकी हास्य-व्यंग्य की प्रवृत्ति, सूक्ष्म प्रकृति चित्रण, उसका ज्ञान-प्रसार तथा पाठकों के मानस को वशीभूत कर लेनेवाली अद्भुत विलक्षणता के दर्शन होते हैं। लेखक को अपने इन निबंधों में व्यक्तिगत जीवन से संदर्भित विविध प्रकार के संस्मरणों,

---

1- सं० डा० कुमार विमल -'आधुनिक हिन्दी साहित्य'

अनुभूतियों आत्म-प्रसंगों व्यक्तिगत रुचियों तथा जीवन-दृष्टियों के प्रकाशन के लिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध हो सका है।

यहां डा० भारती जी के भावात्मक कोटि के निबंधों का अनुशीलन तथाकथित निबंध विधा के विविध रूपों के आधार पर किया गया है।

## रेखा-चित्र :

'आधी रात : रेल एक सीटी' तथा 'पार्क, चिड़ियां और सड़क की लालटेन'[1] शीर्षक निबंध संवेदनात्मक रेखा-शब्द हैं। इनमें कथात्मक संस्मरणात्मक एवं प्रतीकात्मक भावों तथा कल्पनाओं का सुंदर विनियोग हुआ है। 'आधी रात : रेल एक सीटी' शीर्षक रेखा-शब्द में नायक के दो नायिकाओं के प्रति अपने प्रेमादर्श तथा प्रेम-व्यापार को आलंकारिक रेखाओं में शब्दायित किया गया है। देखिये नायिका का रेखा-चित्र कितना आकर्षक बन पड़ा है - 'मैं मेज पर पैर लटकाये बैठा हूं। वह आराम कुर्सी पर अधलेटी है। मैं चुप। वह चुप। मैं उसकी बन्द आंखों को एकटक देख रहा हूं। उसका सारा चेहरा सोनबरनी है पर पलकें गहरे भूरे गुलाब के रंग की है। उसका आधा सौंदर्य उसकी पलकों का सौंदर्य है।'[2]

## संस्मरण एवं डायरी :

जब लेखक अतीत की स्मृतियों को अपनी कोमल कान्त कल्पनाओं से अनुरंजित कर उनका प्रभावशाली रूप से वर्णन करता है तब 'संस्मरण' की सृष्टि होती है। संस्मरण लेखक यदि अपने सम्बंध में लिखे तो उसकी रचना आत्मकथा के निकट होगी और यदि अन्य व्यक्तियों के विषय में लिखे तो जीवनी के निकट'[3] डा० भारती ने उक्त दोनों

---

1- दे० ठेले पर हिमालय (द्वि० सं० 1970)

2- वही- पृ० 55

3- दे० हिन्दीसाहित्य कोश- सं० डा० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 870

ही प्रकार के हृदयाकर्षक संस्मरण लिखे हैं। अपने सम्बंध में लिखे गये आत्मकथात्मक संस्मरण की दृष्टि से 'पश्यन्ती' निबंध संग्रह के आत्मकथ्य के अन्तर्गत लिखा गया निबंध 'नवलेखन : माध्यम में कुछ स्नैपशॉट्स', 'व्यक्तित्व और कृतित्व के अन्तर्गत लिखा गया 'जलौघमग्ना सचराचरा धरा' शीर्षक निबंध तथा 'सर्वथा निजी' शीर्षकान्तर्गत लिखा गया 'शुक्र तारेवाली एक शाम' शीर्षक निबंध उदाहरणीय हैं। उक्त निबंधों में लेखक ने अपने बाल्य एवं किशोर काल की सौंदर्यात्मिक कल्पनाओं, भावुक मन की स्वच्छंद प्रवृत्तियों, बाल-सुलभ आचरणों, तथा रागात्मक वस्तु या विषय के प्रति अपनी आकर्षित प्रियता के अनेक विध संस्मरणों का संवेदनापरक चित्र प्रस्तुत किया है। इनसे उनके व्यक्तित्व के विषय में काफी जानकारी मिल जाती है। जीवनानुभवों पर आधारित प्रस्तुत खण्ड-चित्रों में विषय के प्रति स्पष्टतया, सचाई, मार्मिकता एवं रोचकता आदि गुण उपलब्ध होते हैं। उदाहरण केलिए 'नवलेखन : माध्यम में (कुछ स्नैपशॉट्स) शीर्षक निबंध का निम्नोद्धृत अंश दृष्टव्य है - जिसमें लेखक ने अपने किशोर मन की उस भावुक संवेदनशीलता का विश्लेषण किया है कि जब एक दिन वह सरोवर में कोहरे ढंके कमल और कोका-बेली के फूलों पर तैरती हुई अपनी छाया को दो जल-सांपों के द्वारा सौ-सौ टुकड़ों में काटते हुए पाता है देखिये- 'उस दिन दो डालों के बीच बैठा-बैठा बहुत कुछ सोचता रहा। वह 'मैं' कौन है जो अपने से अलग जीता है ? कमल और सांपों से खेलता है और उसका एक-एक संवेदन मुझ तक पहुंचा देता है ? किशोर मन में पहली बार अपने अन्दर की भाव-प्रक्रिया के प्रति कुतूहल जागा था। याद है मुझे कि दो तीन दिन अजीब बेचैनी और अजब भावुकता मन में बनी रही।' इसी प्रकार 'ठेले पर हिमालय' निबंध संग्रह का 'उसने कहा था : एक संस्मरण' शीर्षक निबंध में भी श्री सुमित्रानंदन पंत के निर्देशन में गुलेरी जी की कहानी 'उसने कहा था' के नाटकीय रूपान्तर में डा० भारती को वजीरसिंह की भूमिका अदा करने में किस प्रकार की कठिनाइयों के साथ सफलता प्राप्त हुई के संस्मरणों का प्रभावकारी रूप में वर्णन किया गया है।

---

1- दे० पश्यन्ती -

अन्य चरितमूलक संस्मरणों में 'ठेले पर हिमालय' में संकलित ' मैं चांद के कलंक को प्रणाम करता हूं' तथा 'कहनी अनकहनी' में संकलित निबंध' वसन्त पंचमी, संसद का प्रांगण और निराला कीयाद' विशेष उल्लेखनीय हैं। दोनों ही साहित्यिक संस्मरण हैं। प्रथम में भारतेन्दु के प्रणयी जीवन में आनेवाले दो प्रेमी पात्र माधवी और मल्लिका के प्रेम-प्रसंगों को तत्कालीन विडम्बनाग्रस्त सामाजिक परिवेश में न्यायोचित ठहराते हुए भारतेन्दु जी के उदात्त व्यक्तित्व का अंकन किया गया है तथा द्वितीय में निराला के विद्रोहशील व्यक्तित्व को लेखक ने अनेक कोणों से देखने का प्रयास किया है।

## यात्रापरक निबंध :

डा0 भारती ने दो यात्रात्मक निबंध लिखे हैं - 'ठेले पर हिमालय' तथा 'कूर्मांचल में कुछ दिन'। इनमें लेखक की सूक्ष्म-निरीक्षण-शक्ति, संवेदनाशीलता और प्रकृति की मनोरम छवि-दर्शन से उत्पन्न उसकी विभिन्न प्रतिक्रियाओं का हृदय-गम्य अंकन किया गया है। लेखक हिमालय की बर्फीली चोटियों के सौंदर्य से इतना अभिभूत हो उठता है कि उसका मन प्रकृति के उस सुंदरतम रूप से तादात्म्य स्थापित कर लेता है - लगा, जैसे मेरे अस्तित्व का चरम साफल्य हिमालय की उंचाइयों से जरूर मेल खाता है। मुझे लगा, जैसे मेरा वास्तविक व्यक्तित्व वहीं है, यहां तो जैसे मैं छद्मवेश धारण कर आपद्धर्म का जीवन बिता रहा हूं। एक दिन यह सब नीचे छोड़कर उन्हीं शिखरों पर जाना है।'[1] इसी प्रकार 'ठेले पर हिमालय' शीर्षक निबंध के अन्त के परिच्छेद में भीहिमालय की भेंट से उत्पन्न लेखक की मार्मिक संवेदनाओं का सुंदर अंकन किया गया है। उक्त निबंधों में कहीं-कहीं लेखक की भावना और बौद्धिकता का अनूठा संयोग हुआ है।

---

1- 'ठेले पर हिमालय' (नि0 सं0)-'कूर्मांचल में कुछ दिन' शीर्षक निबंध-पृ0 11

<u>रिपोर्ताज :</u>

कल्पना के आधार पर रिपोर्ताज नहीं लिखा जाता। रिपोर्ताज में लेखक केवल उन्हीं घटनाओं का वर्णन करता है जो कि उसने आँखों देखी और कानों सुनी हुई होती है।[1] इसमें घटनाओं का वर्णन साहित्यिक एवं कलात्मकता के साथ किया जाता है।

रिपोर्ताज की दृष्टि से डा० भारती कृत निबंध संग्रह 'मुक्त क्षेत्रे : युद्ध क्षेत्रे' तथा 'युद्ध-यात्रा' उल्लेखनीय हैं। दोनों कृतियों में बंगला देश के युद्ध की पृष्ठभूमि में आँखों देखी भयानक घटनाओं का चित्रांकन अत्यंत रोमांचक एवं आकर्षक शैली में किया गया है। ये रिपोर्ताज हेमिंग्वे के साहित्यिक रिपोर्ताज की याद दिलाते हैं तथा युद्ध से सम्बंधित लोगों के मानवीय पक्ष का जिन पर दैनिक पत्रों के रिपोर्टरों या विशेष संवाद दाताओं की आम तौर पर नजर नहीं जाती, मार्मिक चित्रण करते हैं। युद्ध से स्थान में भी सर्वत्र दिखाई देनेवाली प्रकृति लेखक को कितनी सुखद कल्पनाओं से भर देती है तो कहीं उसे अपने कैशोर्य जीवन की स्मृतियों से भाव-विह्वलित कर देती है, तो कहीं उसे अपनी जन्म-भूमि इलाहाबाद की झाँकी करा देती है आदि जैसी बातों का भी उक्त रिपोर्ताजों में आकर्षक एवं रूमानी शैली में वर्णन किया गया है। युद्ध के दर्दनाक क्षणों में ऐसे ही प्रकृति सौन्दर्य के प्रति लेखक की रूमानी आसक्ति की एक झलक देखिये - 'विशद नद, मटमैला पानी, विस्तार इतना कि भय पैदा करे। लेकिन यहाँ ब्रह्मपुत्र ग्राम-हरिणी की तरह है, पतली, चंचल, धूप में कितनी सुहावनी लग रही है। चहल-पहल भरी। कल तक जो दुर्भेद्य गुत्थी की तरह थी वही आज स्वागत की बाँहों की तरह फैली है।'[2]

---

1- दे० हिन्दी साहित्य कोश- सं० धीरेन्द्र वर्मा, पृ० 717

2- दे० धर्मयुग- 13 फरवरी 1972 पृ० 10

## डायरीमूलक निबंध :

'डायरी वह आत्मीय पुस्तक है जिसमें लेखक प्रतिदिन घटित होनेवाली घटनाओं का ही वर्णन नहीं करता अपितु इसके साथ ही मानवीय प्रतिक्रियाओं का वर्णन भी संक्षिप्त, रोचक एवं सुसंगठित रूप से करता है।'[1] विषय-भेद के अनुसार डायरी के अनेक भेद हो सकते हैं यथा चरित्रप्रधान, साहित्यिक आलोचना प्रधान, प्रकृति चित्रण प्रधान तथा सामाजिक -सांस्कृतिक विषय प्रधान आदि।

डा० भारती ने प्राय: विविध विषयक डायरी मूलक निबंध लिखे हैं जो 'ठेले पर हिमालय' संकलन में संकलित है। प्रकृति चित्रण एवं आत्म-चरित्र प्रकाशन सम्बंधी डायरीमूलक निबंधों की दृष्टि से 'एक सपना और उसके बाद', 'काले पत्थर की अंगूठी', 'क्षणों की अथाह नीलिमा', 'चांदनी में कोकाबेली', 'उचटी नींदें' तथा 'केवल कौतुकवश' आदि निबंध विशेष उल्लेखनीय हैं। इसी प्रकार 'कैक्टस', 'राज्य और रंगमंच', 'होना और करना' और 'अनास्था' जैसे साहित्यिक डायरीमूलक निबंध हैं।"[2] इनमें आधुनिक नवयुवकों, साहित्यकारों, पूंजीपतियों आदि की कृतियों-प्रवृत्तियों का बड़ा ही व्यंग्यात्मक आलेखन प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार लेखक ने 'बिलहाबाद की डायरी' लिखी है। लेखक के मतानुसार जब बिलहाबाद (इलाहाबाद) से अकस्मात् यह सनसनीखेज भरा सवाल उठा कि 'क्या नयी कविता निस्तेज हो गयी-' उसकी जांच की सही विवरण आखिरकार एक विशेष रिपोर्टर वहां भेजा गया किन्तु उसके आलस में रिपोर्ट भीपूरी तैयार नहीं की। सिर्फ डायरी के पन्ने भेज दिये। उदाहरण के लिये देखिये उसी डायरी के पन्ने की एक रिपोर्ट - '28 अगस्त : सोलह दिन हो गये। चारों तरफ देख लिया। कोना-कोना छान मारा, पेडों पर चढ़ा, गटर में उतरा पर कहीं एक स्ती निस्तेज या सतेज किसी

---

1- डा० चन्द्रावती सिंह 'हिन्दी साहित्य में जीवन चरित्र का विकास-पृ० 249

2- दे० ठेले पर हिमालय' -

किस्म की भी नयी कविता देखने में नहीं आती । कहते हैं, इस साल फसल मारी गयी है ।

लेकिन अगर नयी कविता नहीं मिली, और उसकी जांच नहीं कर पाया तो अखबार को क्या मुंह दिखाऊंगा ? चिन्ता बढ़तीजा रही है ।'[1]

पत्रमूलक निबंध :

पत्र वह लेख है जो किसी दूर वाले व्यक्ति विशेष को प्रेरित किया जाता है और जिसमें उस दूरस्थ व्यक्ति के प्रति अपनी भावनाओं का उसकी रुचि, समझ एवं योग्यता के अनुसार कलात्मक ढंग से प्रकाशन किया जाता है । पत्रात्मक लेख भी विषय भेद के अनुसार साहित्यिक, आत्मकथात्मक, वर्णनात्मक एवं विचारात्मक आदि प्रकार के हो सकते हैं ।

डा0 भारती ने भी पत्रमूलक निबंध लिखे हैं । उनके पत्रात्मक लेखों में उनका निराशावादी डा0 दर्शन, भावुक समर्पणवाला व्यक्तित्व, एकाकीपन से उत्पन्न पीड़ानुभूतियां, तथा दार्शनिक विचारों की कलात्मक अभिव्यंजना हुई है । 'ठेले पर हिमालय' संकलन के 'फूल-पाती', 'लाल कनेर के फूल और लालटेनवाली नाव' तथा 'डेड सी के तट पर' शीर्षक निबंध इसके सुंदर उदाहरण हैं । 'लाल कनेर के फूल और लालटेन वाली नाव' शीर्षक निबंध में लेखक ने अपने जीवन और मृत्यु विषयक दार्शनिक चिंतन को बडे ही कलात्मक ढंग से प्रस्तुत किया है । उदाहरण के लिये प्रस्तुत है इसी निबंध का एक अंश जिसमें लेखक ने अपनी किसी दूरस्थ प्रेयसी कोपत्र रूप से अपने जीवन की असार्थकता की बात लिखी है - 'वस्तुत: यह सारा जीवन रसमय अनुभूतियों की सार्थक श्रृंखला न होकर असम्बद्ध क्षणों की भंवर है, जिसकी कोई दिशा नहीं । लहरें वर्तुलाकार बहती है, तेजी से चक्कर काटती है और जो उनमें सूखे पत्तों,

---

1- वही- 'बिलहावाद की डायरी' पृ0 155

तिनकों, कागज के टुकड़ों की तरह फंस जाता है, नीचे डूब जाता है। ---लगता है अपनी जिन्दगी एक महावृक्ष है जिसमें पतझड़ आ गया है और एक-एक कर सारे क्षण पत्तियों की तरह झड़ते जा रहे हैं और नयी कोपलें कभी नहीं आयेंगी क्योंकि नीचे से दीमकों ने तने तक पर पपड़ियां डाल रखी हैं-----'[1] 'फूल पाती' शीर्षक निबंध में लेखक ने फूलों के प्रति अपने असीम अनुराग एवं तत्सम्बंधी प्रतिक्रियाओं का लालित्यपूर्ण ढंग से अंकन किया है। वह प्रत्येक के जीवन को फूलों से जोड़कर देखना चाहता है और यदि उसका वश चले तो वह यह भी चाहता है कि - 'मैं समय को फूलों के कैलेण्डर में बांध दूं, दिशाओं को फूलों की पंखुरियों में बसा दूं, मन के हर आरोह-अवरोह को और भावना के हर आवेश को फूलों की पर्तों में दबा दूं और यह निखिल सृष्टि फूलों का जाल बन जाये और मैं इसका रसमर्म पाने के लिए उतना ही आकुल हो उठूं जितने जायसी-----'केहि विधि पावौं भौंर होई ?'[2]

व्यंग्यात्मक निबंध :

डा0 भारती एक सफल व्यंग्य लेखक हैं। उनकी ऐसी कोई भी रचना नहीं होगी कि जिसमें व्यंग्य की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष झलक उपलब्ध न हो। 'ठेले पर हिमालय' निबंध संग्रह में 'गुलिवर की तीसरी यात्रा', 'हिन्दी भाषा और बंगाल का जादू,' 'डाकखाना मेघदूत-शहर दिल्ली,' 'यू0एन0ओ0 में हिन्दी पर मुकदमा', 'नूतन काव्य शास्त्र', 'सिटिंग आन द फेंस', 'कहानी-बाजार-रहस्य भाग-1', 'आधुनिक हिन्दी कविता का पार्टीपरक इतिहास' और 'बिलहाबाद की डायरी' शीर्षक नव व्यंग्य, तथा 'राम जी की चींटी : राम जी का शेर' एक कैरीकेचर और 'अपनी ही मौत पर' एक आत्म-व्यंग्य जैसे व्यंग्य-निबंध संकलित हैं। प्रस्तुत व्यंग्य प्रायः साहित्यिक है। इनमें व्यंग्य के स्तर पर हास्य एवं आक्रोश का तीखापन तीव्रतर हो उठा है। प्रस्तुत निबंधों में व्यक्त विचार-गाम्भीर्य प्रसंगों, व्यंजना-प्रधान वाक्यों,

---

1- ठेले पर हिमालय(नि0सं0)- 'लाल कनेर के फूल और लालटेनवाली नाव'-पृ0 40
2- वही- (नि0 सं0)- पृ0 36

और हृदय-स्पर्शी भावनाओं के रस-प्रवाह में पाठक डूबता-उतराता रहता है। `गुलिवर की तीसरी यात्रा` निबंध में जो तीखा और सीधा व्यंग्य है वह स्पष्ट ही छायावाद के कोमल कैरियर-रिस्ट और राज्याश्रयी कवियों के प्रति है। `डाकखाना, मेघदूत-शहर दिल्ली` शीर्षक निबंध में लेखक ने चाटुकारी वृत्ति प्रिय साहित्यकारों पर करारा व्यंग्य कसा है। `नूतन काव्य शास्त्र` शीर्षक व्यंग्य में भी दिनकर की मठाधीशता और बडप्पन पर उन्हीं की शैली में व्यंग्य किया गया है। इसी प्रकार `आधुनिक हिन्दी कविता का पारंपरिक इतिहास` शीर्षक लेख में लेखक ने नंददुलारे बाजपेयी को अपने व्यंग्य का शिकार बनाया है। लेखक ने स्वयं अपनी ही मौत पर जो व्यंग्य किया है वह जितना मर्मवेधक है उतना ही हास्य एवं कौतुक वर्धक भी है - `उसके पोस्टमार्टम से कुछ विचित्र बातें मालूम हुईं। पहली बात तो यह कि उसकी नसों में बहनेवाले खून में बहुत सा अंश सोडावाटर का था और इसीलिए वह खूब जल्दी ही ठण्डा हो जाता था, और एक तीखी गैस उसमें हमेशा बनी रहती थी। जहां साधारणतया लोगों के शरीर में हृदयपिण्ड होता है वहां केवल विचारपिण्ड था, जहां मस्तक में मस्तिष्क-द्रव रहता है वहां केवल हृदयपिण्ड था। यह एक अजब सी परिस्थिति थी और शायद इसीलिए उसके कुछ मित्रों का कहना था कि उसकी भावनाएं (प्रेम, घृणा, मैत्री वगैरह) बिलकुल दिमागी थीं और उसके विचार भावुक।`[1]

## डा० भारती के निबंधों का शैली-तात्विक अध्ययन :

सामान्यतया साहित्य में प्रयुक्त अभिव्यक्ति की सार्थक एवं कुशल भंगिमा या पद्धति को ही विद्वानों ने `शैली` संज्ञा से अभिहित किया है। शब्दकोश के अनुसार `शैली` के अर्थ हैं चाल, ढंग, प्रणाली, रीति, प्रथा तथा वाक्य-रचना का विशिष्ट प्रकार आदि।[2] आजकल इसे अंग्रेजी के `स्टाइल` का पर्याय माना जाता है। शैली का निर्माण लेखक की भाषा, उसके व्यक्तित्व एवं विषय वैविध्य के आधार पर होता

---

1- वही- `अपनी ही मौत पर` शीर्षक निबंध, पृ0 176-177

2- -रामचन्द्र वर्मा, प्रामाणिक हिन्दी कोश : पृ0 1230

है। इसीलिए जहां भाषा को शैली का अविभाज्य अंग कहा गया है वहीं 'स्टाइल इज मैन' कहकर व्यक्तित्व को भी शैली से अभिन्न ~~अर्थ~~ माना गया। प्राय: लेखक की भाषा उसके व्यक्तित्व एवं विषय वैभिन्य के आधार पर शैली का रूप भी बदल जाया करता है। शैली की इसी विविधरूपा प्रकृति के कारण ही आज उसके प्रकारों की सीमा का कोई सुनिश्चित अंत नहीं है। तथापि उसके कतिपय गुण विशेष के आधार पर विद्वान मनीषियों ने उसके अध्ययन को सरल बनाने का प्रयत्न किया है।

'यूरोप में शैली पर प्रारंभ में जो विचार हुआ, वह भाषण कला की दृष्टि से ही हुआ',[1] और इसी दृष्टि से शैली के गुणों को भी देखा गया। 'यूनान में प्लेटो के पूर्व गार्जियास तथा थ्रेसीमेकस ने वक्तृत्व कला में आकर्षण तथा अलंकारों की आवश्यकता बतायी थी, और वाक्य शैली को साधारण बोलचाल के स्तर से उठाने का प्रयत्न किया था।'[2] आधुनिक युग के आलोचकों में एफ० एल० लुकास ने अपने 'स्टाइल' नामक ग्रंथ में शैली के गुणों पर विस्तारपूर्वक लिखा है। उन्होंने ~~स्पष्टता~~ स्पष्टता, समास, विविधता, सरलता, शिष्टता, विनोद, उल्लास, ईमानदारी, अर्थवत्ता, शक्तिमत्ता, तेजस्विता आदि गुणों की ~~चर्चा~~ चर्चा की है।[3] एलन वार्नर ने भी सरलता, अर्थमयता, स्पष्टोक्ति, नादमयता, अनुकता तथा आवश्यक नम्रता को शैली के गुण माना है।[4]

आधुनिक काल के हिन्दी के आचार्यों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डा० श्यामसुंदर दास, डा० नगेन्द्रादि ने प्राय: मम्मट और विश्वनाथ आदि का अनुकरण करते हुए शैली में प्रसाद, माधुर्य और ओज जैसे तीन गुणों की अवस्थिति मानी है। करुणापति,

---

1- पं० सीताराम चतुर्वेदी, शैली और कौशल, पृ० 52
2- धीरेन्द्र वर्मा, हिन्दी साहित्य कोश, पृ० 552
3- दे० एफ०एस० लुकास- 'स्टाइल'
4- Alan Warner, A short guide to English Style.

त्रिपाठी जी ने गुणों के दो दो वर्ग- बौद्धिक और रागात्मक बनाकर प्रथम वर्ग में शुद्धता, सरलता, स्पष्टता, अलंकृति तथा औचित्य का समावेश किया है तो दूसरे वर्ग में मर्मस्पर्शिता, और सजीवता की परिगणना की है। व्याकरण की शुद्धता, स्पष्टता, सजीवता, लालित्य, उल्लास, संगीत आदि गुण भी उन्होंने शैली के लिए आवश्यक माने हैं।[1] डा0 मु0 ब0 शहा ने शैली के गुणों का विचार भाषा के गुण( शुद्धता, आलंकारिकता, अर्थवाहकता, तथा सरसता), रचना के गुण(सूत्रबद्धता, प्रवाह और प्रमाणबद्धता)- तथा व्यक्तित्व के गुण( बौद्धिक, भावनिक)-इन सबको मिलाकर करना अपेक्षित समझा है।[2]

## निबंधों की शैलियां :

निबंधों में प्राय: भाव, विचार और कल्पना अथवा विषय,भाषा एवं विधा के आधार पर निबंधों की विविधरूपा शैलियों के वर्गीकरण पर विचार किया गया है। विषय और विधा के अनुसार निबंधों की निम्नलिखित पांच मुख्य शैलियां मानी गई हैं -(1) भावात्मक,(2) वर्णनात्मक,(3) विवरणात्मक (4) विचारात्मक और(5) हास्य-व्यंग्यात्मक।

### 1- भावात्मक शैली :

इस शैली में भावों की प्रधानता रहती है। भाषा गीत के समान लयबद्ध, कभी बिखरी हुई कभी छंदोमय, कभी निजी बातचीत के समान होती है। आत्मीयता उसका मुख्य वैशिष्ट्य माना जाता है। प्राय: व्यक्तिपरक या वैयक्तिक निबंधों की शैली इसी प्रकार की होती है। लेखक वर्णित विषयों का अपनी भावना, कल्पना

---

1- करुणापति त्रिपाठी, शैली- पृ0 87-98

2- डा0 मु0ब0शहा, हिन्दी निबंधों का शैलीगत अध्ययन-पृ0 83

एवं व्यक्तिगत गुणों के आधार पर जब उनका आकर्षक रूप में वर्णन करता है तब वह पाठकों के साथ अधिक निकटता का सम्बन्ध स्थापित कर लेता है।

डा० भारती के 'ठेले पर हिमालय' संकलन के निबंध प्राय: भावात्मक शैली से युक्त हैं। डा० भारती अपने स्वच्छंद कल्पनाप्रिय रोमांटिक व्यक्तित्व, अपनी कलात्मक रुचि, संवेदनाशील भावुकता और सौंदर्य की उत्कट प्यास के प्रति सहज ही आकर्षित होनेवाली रस-सिक्त आत्मा के कारण ही विविध वर्णनों, विवरणों और विचारों को भी ऐसा भाव-लालित्य प्रदान कर सके हैं जिससे पाठक मंत्र-मुग्ध हुए बिना नहीं रहता। उदाहरण के लिए 'ठेले पर हिमालय' की अधिकांश रचनाएं -'एक सपना और उसके बाद', 'काले पत्थर की अंगूठी', 'दाणों की अथाह नीलिमा', 'चांदनी में कोकाबेली', 'कौतुकवश', 'फूल-पाती', 'आधीरात : रेल की सीटी' तथा 'पश्यन्ती' संकलन की 'शुक्रतारेवाली एक शाम' और रत्नाकर का ~~ ~~० सान्ध्य-चिन्तन' आदि शीर्षक रचनाएं भावात्मक शैली के लालित्य से युक्त श्रेष्ठ रचनाएं हैं।

उक्त निबंधों में निबंध का प्रारंभ कहीं आकर्षक ढंग से, कहीं बातचीत की शैली में, तो कहीं किसी भाव, वस्तु या तथ्य के सरस वर्णन से किया गया है। कहीं आदि से अंत तक एक ही भाव या अनुभूति को विविध भावों के लुभावने अ रंगों में रंगायित करके देखा गया है। भाव-शृंखला बीच-बीच में बिखर जाने पर भी अंततोगत्वा चर्चित विषयों की संगति, क्रमबद्धता एवं अन्विति के गुणों को आत्मसात् कर लेती है। इस रूप में निबंधों ~~ का अंत भी विस्मय बोधक ढंग से होता है। 'काले पत्थर की अंगूठी' एक ऐसा ही निबंध है लेखक प्रारंभ और मध्य तक जो बातें कहता है उससे लगता है कि भाव-सूत्र बिखर रहे हैं, किन्तु अंत में संगति बैठ जाती है और फिर भी एक संवेदना, एक कौतुक की प्रतीति हुए बिना नहीं रहती। लेखक ने 16 रुपये में काले सुलेमानी पत्थर की खरादी हुई तथा बीच में नकली पुखराज जड़ी एक अंगूठी खरीद कर कुछ दिनों तक पहनी। किन्तु एक दिन उत्साह से मेज पर हाथ पटकते ही खटाक से चकनाचूर हो गई। लोगों ने पूछा 'क्या टूटा ?' तो बताया 'कफ का बटन टूट गया' किन्तु आधे घण्टे बाद वहीं जाकर पुखराज उठा लिया जाने

क्यों ? लेखक के शब्दों में - 'ग्रीक लोगों की एक वीणा होती थी । हवा से बजती थी । डाल पर आहिस्ते से टिका दी । तार झंकार देने लगे । मैंने भी आजकल अपने को बडी खूबसूरती से, बडे आहिस्ते से, कुंजों, डालों से टिका दिया है । हर हवा का झकोरा मुझे झंकार देता है । और कुछ हो या नहीं कौन जाने, पर ताजगी तो है ।'[1] उक्त उद्धरण में ईमानदारी, स्पष्टता, आलंकारिकता, अर्थवाहकता, सरसता तथा भावनिकता के साथ ही क्रमबद्धता जैसे शैली के गुणों को सहज ही देखा जा सकता है । एक अन्य उदाहरण देखिये, लेखक शुक्रतारे के सौन्दर्य को पाने कितना भावविह्वल हो उठता है - 'गन्धराज और शिरीष के पीछे से धीरे-धीरे शुक्रतारा उठ रहा है । थोडी देर बाद वह मेरे आंगन में चमकेगा-कितना प्यारा लगता है अपने छोटे से फूल-बसे घर के आंगन में रजनीगन्धा के फूल जैसे उजले शुक्रतारे का रात भर कहलाना-----।'[2]

उनके कतिपय भावात्मक शैली प्रधान निबंधों में वैचारिक तत्वों का भी पुट मिलता है, किन्तु वहां भी बुद्धि तत्व हृदय के स्पर्श से संवेदनापरक अभिव्यक्ति पा लेता है । उदाहरण के लिए 'कूर्मांचल में कुछ दिन । 'आधी रात: रेल एक सीटी', 'पार्क', चिडियां और सडक की लालटेन' तथा 'डेड सी के तट पर' आदि ऐसी ही रचनाएं हैं । उदाहरणार्थ- 'और कल से एक और अजीब बात सोच रहा हूं, मृत्यु शायद किसी एक अमंगल क्षण में घटित होनेवाली विभीषिका नहीं है । वह एक निरंतर चलनेवाली प्रक्रिया है । कहीं न कहीं, हमारा कोई न कोई अंश प्रतिक्षण मरता रहता है । कभी-कभी क्या ऐसा नहीं लगता कि पांच साल पहले से किसी एक व्यक्ति, किसी एक आदर्श, किसी एक भावना को, हमारे जिस व्यक्तित्व ने बेहद प्यार किया था, अपने को उत्सर्ग कर दिया था, आज वह हमारा

-----------------------------

1- ठेले पर हिमालय- पृ0 20

2- पश्यन्ती- 'शुक्रतारे वाली एक शाम- पृ0 62

व्यक्तित्व मर चुका है । पर कभी-कभी इसके बिलकुल विपरीत बात भी लगती है। हमारे व्यक्तित्व का कोई अंश कभी भी नहीं मरता । जाने कहां बीज की तरह परत-दर-परत जमीन के अन्दर दबा रहता है। मौका पाकर अकस्मात उसमें जीवन का संचार हो उठता है हरियाली दौड़ आती है।`[1]

डा0 भारती की भावात्मक शैली, भाषा-सौष्ठव की दृष्टि से समृद्ध एवं प्रभावोत्पदक है। भावानुकुल बिम्बों व प्रतीकों का प्रचुर प्रयोग उसे काव्यात्मक या गद्य-काव्य की सी लयात्मक मृदुता एवं चित्रमय रमणीयता का कलेवर प्रदान कर देता है। यही कारण है कि इन निबंधों में माधुर्य एवं प्रसाद गुण की अवस्थिति सर्वत्र दृष्टिगत होती है। विभिन्न भाव-स्थलों या प्रसंगों के अनुसार भाषा कहीं प्रवाह शैली तो कहीं विक्षेप शैली के रूपों में प्रकट हो गई)है। `प्रवाह शैली अभिधात्मक गुणों से युक्त, लेखक की आन्तरिक उथल-पुथल को दर्शानेवाली, विशिष्ट शाब्दिक लय से युक्त, अपूर्ण तथा खंडित वाक्योंवाली होती है। भावों का उद्घाटन प्रवाही ढंग से होता रहता है और उसमें उचित तारतम्य भी होता है।`[2] विक्षेप शैली में भावों के प्रकटीकरण में कोई विशिष्ट लय नहीं होती, न तारतम्य या अनुपात होता है। प्रलाप करने वाले व्यक्ति के समान इस शैली से आच्छन्न निबंधकार की भाषा उखड़ी हुई, कुछ असंबद्ध, अति भावुकता से लबालब, तर्कहीन, पुनरावृत्ति से युक्त बन जाती है। वाक्य की रचना में भी अनुपात या सुगठितता नहीं होती । वे बिखरे हुए, आधे-अधूरे कुछ सम्बद्ध, कुछ असम्बद्ध ऐसे होते हैं।[3] प्रवाह-शैली के उदाहरण की दृष्टि से `ठेले पर हिमालय` संग्रह की `कूर्माचल में कुछ दिन`, `दाणों की अथाह नीलिमा`, `उचटी नींद` और `पू00 फूल पाती` आदि रचनाओं को देखा जा सकता है। `जिन्दगी को फूलों से तौलकर, फूलों से मापकर फेंक देने में कितना

---

1- `ठेले पर हिमालय-`डेड सी के तट पर`-पृ0 46

2- डा0 मु0ब0 शहा-हिन्दी निबंधों का शैलीगत अध्ययन-पृ0 89

3- वही- पृ0 89

सुख है। तुम कभी आगरे के किले गयी हो। वहां एक पत्थर का हौज बताया जाता है जिसमें नूरजहां गुलाब के फूल भरवा कर नहाया करती थी। उसी ने इत्र का आविष्कार किया था। अगर मध्ययुग में पैदा हुआ होता न,----तो मैं नहीं कह सकता कि मैं शेर अफगन और जहांगीर दोनों से ज्यादा नूरजहां को न प्यार करने लगता----इसलिए नहीं कि वह सुन्दर थी-----उंह, कोई-----से ज्याद सुंदर थोडे ही रही होगी पर फिर भी मैं उसे इसलिए प्यार करने लगता कि वह फूलों से नहाती थी।`[1] इसी प्रकार विक्षेप शैली जो प्रलाप का ही एक अंग कहलाती है का प्रयोग भी उनके अधिकांश भावात्मक निबंधों में किया गया है। उदाहरणार्थ- `कभी-कभी ऐसी स्थिति में जो सचमुच बडे लोग होते हैं वे चल देते हैं तो आगे ही चलते चले जाते हैं -----लौटते नहीं। मैं तो कमजोर हूं न ? बेहद कमजोर, इसीलिए लौट आता हूं वापस- इस क्षणिक मृत्यु और अगणित मृगतृष्णाओं के देश में। लौट आता हूं इस डेड सी के तट पर- यह बेजबान मुर्दा समन्दर जो अब मुझे कुछ नहीं दे सकता-------`[2]

## (2) वर्णनात्मक शैली :

सहज तथा सरल भाषा में विभिन्न वस्तुओं, दृश्यों या पदार्थों का वर्णन जब आत्मीयता तथा सरस कल्पना के माध्यम से आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है तब वर्णनात्मक शैली की अवस्थिति मानी जाती है। इसमें सरल भाषा का प्रयोग होने से यह व्यास-शैली का रूप ले लेती है। डा० भारती के कतिपय निबंधों में इस शैली का भी उपयोग सुंदर एवं आकर्षक ढंग से किया गया है। यथा- `वे उदास पीपल के पेड के नीचे बैठे हैं, चुपचाप सूखे पत्तों की शय्या पर। घूमरहित

---

1- `ठेले पर हिमालय`-फूल पाती - पृ० 34

2- वही- डेड सी के तट पर, पृ० 51

अग्निशिखा-सा उनका रूप जगमगा रहा है। श्रीवत्सधारी, बादलों से सांवले तपे कंचन की तरह निष्कलंक, रेशम के दो पटों में आवेष्टित, मंगलमय, मन्द मुसकान में रंगे हुए होंठ, कन्धों पर भौंराले केश, कानों में जगमगाते हुए मकर-कुण्डल और फूलों की माला में जगमगाता हुआ कौस्तुभ मणि- बायां पैर दाहिनी जंघा पर रखा हुआ। पांव के तलवों में हिरण की-आंखों का सा निष्पाप सौंदर्य।'[1]

(3) विवरणात्मक शैली :

इस शैली का मुख्य वैशिष्ट्य कथात्मकता(नरेशन) है। इसका सम्बंध काल से रहता है, इसमें वर्णित वस्तु गतिशील रहती है। इस प्रकार की शैलीवाले निबंधों में व्यक्ति के जीवन में घटित होनेवाली युद्ध, यात्रा, शिकार, इतिहास या कल्पना आदि सम्बंधी घटनाओं का विवरण इस ढंग से प्रस्तुत किया जाता है कि आंखों के सामने साक्षात् खड़ी हो जांय। यह शैली भी प्रायः व्यास शैली का ही अनुगमन करती है।

डा० भारती जी ने उक्त शैली का भी सर्वाधिक प्रयोग अपने निबंधों में किया है। 'युद्ध यात्रा' तथा 'मुक्त क्षेत्रे युद्ध क्षेत्रे' के निबंधों के अतिरिक्त 'ठेले पर हिमालय', 'कूर्मांचल में कुछ दिन', 'गुलीवर की तीसरी यात्रा', 'एक छोटी चमकनेवाली मछली की कहानी'[2] तथा 'पश्यन्ती' संग्रह के 'जलौघमग्ना सचराचरधरा', 'वह एक कहानी और उसके अनेक परिशिष्ट', 'रत्नाकर शान्ति का सान्ध्य-चिन्तन' आदि जैसे निबंध विवरणात्मक शैली से युक्त निबंधों के उत्तम उदाहरण कहे जा सकते हैं। उदाहरणार्थ- 'मैं भारत लौटा तो सामन्त चणाक ने अपने पचास सशस्त्र

---

1- वही- एक सपना और उसके बाद- पृ0 16-17

2- दे0 ठेले पर हिमालय-

अश्वारोही मेरे साथ कर दिये थे। ग्राम उजड़े पड़े थे। झाड़ियों में घुघाते लुटेरों के झुण्ड छिपे बैठे रहते। मुझसे खाया नहीं जाता। राह में अक्सर घोड़े शवों को लांघकर चलते और पालकी ढोनेवाले भारिक राह बदल देते।"[1]

(4) विचारात्मक शैली :

बौद्धिक विवेचन की अधिकता इस शैली का प्रमुख वैशिष्ट्य है। बुद्धि जब किसी तथ्य का उद्घाटन, विवेचन, तर्क-वितर्क या विश्लेषण के द्वारा प्रस्तुत करती है तब वह विचारात्मक शैली का ही आश्रय ग्रहण करती है। 'अमित अर्थ-आखर थोड़े' के गुण से युक्त यह शैली प्राय: समास शैली के रूप में परिणत हो जाती है। इसमें मार्मिक विवेचन, तर्क-पद्धति, विचार-प्रतिपादन तथा बौद्धिक क्षमता के होने से लेखक का व्यक्तित्व भी उभर आता है जिससे उसके ज्ञान, चिन्तन एवं प्रतिभा का सहज ही परिचय मिल जाता है। बुद्धि-तत्व की प्रधानता होने के बावजूद भी इसमें हृदय-तत्व नितांत उपेक्षित नहीं रहता।

डा0 भारती ने अपने निबंध-संग्रह 'कहनी अनकहनी' तथा 'पश्यन्ती' के कुछ निबंधों में विचारात्मक शैली का प्रयोग किया है। उन्होंने अपने साहित्य, राजनीति, भाषा, धर्म तथा संस्कृति सम्बंधी विचारात्मक निबंधों में तद्सम्बंधित अनेक समस्याओं, प्रश्नों एवं वाद-विवादों का बड़े ही संतुलित एवं तटस्थ दृष्टिकोणों के द्वारा खण्डन-मण्डन करते हुए अपने उदारतावादी मतों की स्थापना के लिए बौद्धिक विश्लेषण प्रधान शैली का आश्रय लिया है। अनेक स्थानों पर चर्चित समस्याओं के पक्ष या विपक्ष में लेखक ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी है तो कहीं

---

1- पश्यन्ती- 'रत्नाकर शान्ति का सान्ध्य-चिन्तन- पृ0 81

अपने मत की सिद्धि के लिए अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये हैं। स्थान-स्थान पर तथ्यों के प्रतिपादन के लिए उद्धरण शैली का प्रयोग भी किया गया है। हां, यह अवश्य है कि उनका भावुक एवं मानवता प्रेमी हृदय उनके वैचारिक कोणों से झांकता हुआ प्रतीत हो जाता है। 'कहनी अनकहनी' के 'विकासोन्मुख व्यवस्था : ह्रासोन्मुख आत्मीयता,' 'जहां प्रशासकों और न्यायाधीशों का निर्माण होता है,' 'अष्टग्रही', 'बुद्धिजीवी : द्वितीय कोटि', तथा 'पश्यन्ती' संग्रह के 'रवीन्द्र जयंती का वर्ष : एक दृष्टि', 'एशियायी आधुनिकता और हूलाहूप' और 'आधुनिकता अर्थात् संकट का बोध' ऐसे ही निबंध हैं जिनके पार्श्व से डा० भारती के बौद्धिक गांभीर्य, को, उनकी तर्काश्रित प्रतिपादन की पद्धति को तथा उनके ज्ञान-विस्तार के क्षेत्र को देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए देखिए- वे दृढ़ निश्चय पूर्वक यह मानते हैं कि - 'आज के युग में, न केवल वैज्ञानिक यातायात के कारण, अखिल विश्व की नियति एक सूत्र में पूर्णतः आबद्ध हो गई है। वैसे तो समस्त संसार की मानवता सदैव एक रही है, जाति, राष्ट्र, धर्म, रक्त के विभाजन केवल सतही रहे हैं, लेकिन जितने अर्थों में जिस स्तर पर आज का मनुष्य विश्व-मानव है, वैसा इतिहास में कभी नहीं रहा। अपने अगणित भौतिक और सांस्कृतिक सूत्रों से वह समस्त विश्व में घटित होनेवाली इतिहास प्रक्रिया के प्रत्येक क्षण से अनिवार्यतः आबद्ध है। प्रत्येक क्षण, प्रत्येक जाने-अनजाने स्थल पर उसकी नियति बनने या बिगड़ने के क्रम में है। पूर्व की नियति, या पूर्व की ऐतिहासिक गति सर्वथा पृथक है और रहेगी, इस भ्रान्त धारणा को कुछ आचार्य बड़े अभिमान पूर्वक दुहराते हैं और अक्सर आधुनिक साहित्य-बोध के विरुद्ध इसे एक बहुत सशक्त हथियार मानते हैं। लेकिन दुर्भाग्य से वे यह नहीं जानते कि आधुनिक साहित्य-बोध को विदेशी सिद्ध करने के लिए पूर्व और पश्चिम के अनिवार्य पार्थक्य की जिस दलील का आश्रय वे लेते हैं, वह दलील स्वयं एक विदेशी दलील है जो 19वीं शताब्दी में युरोपीय उपनिवेशवादियों ने पेश की थी।'[1]

---

1- पश्यन्ती- आधुनिकता अर्थात् संकट का बोध - पृ० 152

(5) हास्य-व्यंग्यात्मक शैली :

डा० भारती की लेखनी का प्रथम गुण है हास्य एवं व्यंग्य की तेजतर्रार शैली पर आधारित मर्मबेधक भावों तथा विचारों की अभिव्यंजना । कटु व तीखे व्यंग्य को उन्होंने विनोद तथा हास्य की मिश्री में घोल कर ऐसा आसव तैयार किया है जिसका आस्वाद लेते ही आम्लक रस की भांति प्रथम कड़वी पश्चात् मधुर प्रतीति हो जाती है । उनका व्यंग्य आम्लक रस की भांति ही प्रवर्तमान अनेकविध विकृतियों, एवं विकारों के निवारण तथा परिष्कार की प्रक्रिया के रूप में अपने अद्भुत एवं सफल चमत्कार को सिद्ध कर लेता है । स्वयं निबंधकार ने इस सम्बंध में अपनी उदार दृष्टि का परिचय देते हुए कहा है - 'सूरज का सातवां घोड़ा' तथा 'ठेले पर हिमालय' के कुछ निबंधों में व्यंग्य पर हाथ आजमाया था । वैसे-मेरे अनेक विरोधी आलोचक बड़े कृपालु हैं । वे तो मेरे सारे लेखन को व्यंग्य-हास्य ही मानकर इस क्षेत्र में भी मुझे प्रतिष्ठित करने को कटिबद्ध हैं । मैं ही हूं कि जो इस सेहरे को स्वीकारने राजी नहीं होता ।'[1]

उनके विचारात्मक तथा भावात्मक कोटि के निबंधों में व्यंग्य कहीं स्फुट, कहीं अस्फुट धारा तो कहीं एक धारी, कहीं दुधारी पैनी नश्तर के रूप में दृष्टिगत होता है । निबंधकार ने सभी प्रकार की बुराइयों और अनैतिक प्रवृत्तियों के सुधार के लिए व्यंग्य-को एक कारगर हथियार के रूप में देखा है । उन्होंने जहां भी उचित एवं आवश्यक समझा, बड़े से बड़े नेताओं और साहित्यकारों को भी अपने व्यंग्य का शिकार बनाया है । इसमें उनकी निर्भीकता, ईमानदारी, सच्चाई के साथ ही उनके मानवता विरोधी प्रवृत्तियों के सशक्त प्रहारक तथा मानवीय मूल्यवादी दृष्टि के पक्ष

---

1- कादम्बिनी, जून 1973 'क्यों और क्यों नहीं' शीर्षक स्तम्भ ।

प्रस्तोता जैसे अन्य रूपों के भी दर्शन होते हैं। उदाहरण के लिए देखिए - `बिलाहाबाद की डायरी` का एक व्यंग्य रिपोर्ताज- डा0 भड़कधीरा लुप्त(डा0 जगदीश गुप्त) और कीचकान्त वर्मा(लक्ष्मीकान्त वर्मा) जैसे दो अत्यन्त प्रभावशाली कवियों को अज्ञेय अपने सप्तकों, में नहीं पचा सके- `द्वै न समाये सप्ताक तीनि में `, तब इस सम्बंध में निबंधकार ने भड़कधीश लुप्त से जो बयान मांगा तो बोले- `लिखा है, लिखा है। पढ़ लेना।"

मैंने पढ़ा। उन्होंने नयी कविता की भृगुसंहिता लिखी है। उसमें उन्होंने तीनों काल का सब हाल लिख दिया है। उसके कुछ सिद्धान्त इस प्रकार हैं : (1) मनुष्य महान है। नयी कविता मनुष्य करता है इसलिए नयी कविता महान है। (2) कीचकान्त लघु मानव की बात गलत कहते हैं। पर उनका मन रखने को लघु की जगह घुल-मानव चल सकता है। (3) लघु महान है, महान लघु है अत: लमघुहान चला दिया जाये तो ठीक रहेगा। (4) नया कवि स्वभावत: ईमानदार होता है। अज्ञेय नये कवि हैं। अज्ञेय बेईमान हैं। बेईमान स्वभावत: ईमानदार होता है। (5) जिस कविता पर सारा बखेड़ा खड़ा हुआ अज्ञेय की वह कविता मर्म से निकली है, मर्मस्पर्शी है। उसे पढ़कर गुस्सा आता है। नयी कविता में मर्मस्पर्शी कविताओं को पढ़कर गुस्सा आता है।

यह पंचशील उन्होंने लिखे अभी हैं पर निर्धारित पूर्व-जन्म में ही कर लिये थे। मगर कुछ अन्य लोगों ने पांच की जगह पच्चीस शील गढ़ लिये और केवल संख्या के बल पर सप्तकों में घुस गये। पर भड़कधीरा जी ऐसी बातों की परवाह नहीं करते।`[1]

## समीक्षा -साहित्य

### डा0 भारती की चिन्तन प्रणाली एवं उनकी समीक्षात्मक दृष्टि :

नई समीक्षा के क्षेत्र में डा0 भारती जी का पदार्पण उनकी महत्वपूर्ण

---

1- ठेले पर हिमालय- पृ0 159

दो समीक्षात्मक कृतियों यथा 'प्रगतिवाद : एक समीक्षा' (1949 ई0) तथा 'मानव मूल्य और साहित्य' (1960 ई0) से होता है। प्रस्तुत दो कृतियां ही उन्हें नये कवि-समीक्षकों के बीच प्रतिष्ठित कर देती हैं। उक्त ग्रंथों के अतिरिक्त उनके शोध-प्रबंध 'सिद्ध-साहित्य' तथा उनके निबंध-साहित्य में भी उनके समीक्षक का रूप उभर उठा है।

डा0 भारती के समीक्षक की सबसे बड़ी बात तो यह है कि जिस रूप में उन्होंने अपने काव्य, नाटक और कथा-साहित्य में अपने भावों, विचारों और कल्पना के प्रतिमानों को सर्जनात्मक स्तर पर अभिव्यक्ति प्रदान की है ठीक उसी के समानान्तर वैचारिक कोणों के माध्यम से अपने समीक्षात्मक चिन्तन को भी विश्लेषण, विवेचन एवं उदाहरणों के द्वारा सिद्ध करने का प्रयास किया है।

डा0 भारती के समीक्षात्मक चिन्तन की नींव है, उनके पौर्वात्य एवं पाश्चात्य साहित्य, संस्कृति, राजनीति इतिहास एवं दर्शन के पर्याप्त व्यापक और गंभीर अध्ययन की पीठिका। अत: वे समीक्षा के स्तर पर जो भी बात प्रस्तुत करते हैं उसे उसके संपूर्ण परिवेश की ऐतिहासिकता के संदर्भों में विश्लेषित और विवेचित करते हुए यह सिद्ध करने प का प्रयास करते हैं कि क्या वह मनुष्य के स्वतंत्रतथा विकास के पथ में कहीं वैचारिक दुराग्रहता या संकीर्ण मतवादिता के कारण बाधक तो नहीं है? क्या वह मानवता के शाश्वत मूल्यों पर रहकर अपने विकास के नवीनतम मोड खोज रही है, या तो फिर किसी प्रकार के अर्थहीन या मानवता विरोधी खोखले आदर्शों या कल्पनाओं के वैचारिक फलक को ही अपना मूलाधार बनाकर आगे बढ़ने का प्रयास करती है। इस स्तर पर उनके समीक्षात्मक चिन्तन में उनकी स्वस्थ एवं संतुलित दृष्टि, वैचारिक प्रौढ़ता तथा अभिव्यक्ति की ईमानदारी पग-पग पर दृष्टिगत होती है। हां, यह अवश्य है कि कतिपय विद्वान उनके चिंतन में अन्तर्विरोधों तथा वदतोव्याघातों के दोष को भी पाते हैं किन्तु उनकी 'साहसपूर्ण ईमानदारी और विवेक पूर्ण दृष्टि' पर आधारित 'अहमियत' को तो नकारा ही नहीं जा सकता।

उनके चिन्तन की विकासधर्मिता ने जहां एक ओर उसे रूढ़ होने से बचाया है वहां दूसरी ओर उसमें अन्तर्विरोधों और वदतोव्याघातों को भी उपस्थित किया है। 'प्रगतिवाद : एक समीक्षा' और 'मानव-मूल्य और साहित्य' में इन विरोधों को लक्षित किया जा सकता है। इतना होने पर भी उनके चिन्तन की मूल-भित्ति सदा एक ही रही है और वह है मानव के प्रति अडिग आस्था। अपनी इसी आस्था के कारण भारती उन सभी मूल्यों का समर्थक है जो मानव-चेतना के विकास में सहायक हैं - वे मूल्य नये हों या पुराने- और वह किसी भी धारणा को उसी सीमा तक स्वीकार कर पाता है जिस सीमा तक वह मानवात्मा और विवेक को अपने चंगुल में नहीं जकड़ती।'[1]

अत: यह कहा जा सकता है कि वे साहित्य में मानव-मूल्यवादी समीक्षा-प्रणाली के पक्षधर हैं। और इसीलिए आज की समस्त जटिलताओं में मानवीय मूल्यों के आधार पर कला या साहित्य को आधुनिक सन्दर्भ में समझने की आवश्यकता पर बल देते हुए लिखते हैं 'मानवीय मूल्यों के सन्दर्भ में यदि हम साहित्य को नहीं समझते तो अक्सर हम ऐसी झूठी प्रतिमान योजना को प्रश्रय देने लगते हैं कि समस्त साहित्यिक अभियान गलत दिशाओं में मुड़ जाता है। चाहे हम परम्परा का मूल्यांकन कर रहे हों, चाहे सामाजिक उपादेयता की माप कर रहे हों, यदि हम उसके मानवीय आधार से स्खलित होते हैं तो हम साहित्य के मर्म को नहीं पा सकते, और यदि वह साहित्य के मर्म को नहीं पा सकता तो समीक्षक चाहे पाठानुसंधान से लेकर वर्ग-विश्लेषण तक की 'तथा-कथित वैज्ञानिक' भूलभुलैयों में भटके, पर वह साहित्य के बाह्य को ही टटोल कर रह जाता है। एकेडेमिक(शास्त्रीय या हिन्दी के संदर्भ में 'परीक्षोपयोगी') समीक्षा से लेकर मार्क्सीय समीक्षा तक की यही असफलता रही है।'[2] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि डा0 भारती ने मानवीय मूल्यों को ही

---

1- दे0 डा0 धर्मवीर भारती(सं0 लक्ष्मणदत्त गौतम), सुंदरलाल कथूरिया का लेख 'काव्य चिन्तन, पृ0 53

2- मानव मूल्य और साहित्य- पृ0 155

साहित्य का वह मर्म मानता है कि जिसकी उपेक्षा कर कोई भी कला या चिन्तन प्रणाली अपने गौरव के चिर-स्थायीत्व को नहीं पा सकती । बाबू गुलाबराय ने [illegible] इस सम्बंध में लिखा भी है 'साहित्य के मूल्य जीवन के मूल्यों से भिन्न नहीं है । अत: यह बात सर्वमान्य है कि जिसका जीवन में मूल्य है, उसका साहित्य में भी मूल्य है ।'[1] डा0 भारती की समीक्षा दृष्टि वस्तुत: प्रगतिधर्मिता के सार्वभौमिक विचारों, एवं जीवन के शाश्वत् मूल्यों पर आधारित होने के कारण 'उनके चिन्तन में न तो परम्परागत भारतीय काव्य-शास्त्र की अवमानना है(उसके विकास का प्रयत्न हो सकता है और उसके लिए उसके रूढ़ रूप को नकारा भी जा सकता है) और न ही पाश्चात्य अवधारणाओं की गर्हणा । दोनों के सार-तत्वों का ग्रहण भारती का वैशिष्ट्य है- और अपने इसी वैशिष्ट्य के कारण हिन्दी नव्यालोचकों में भारती का विशिष्ट स्थान है । स्वतंत्र और स्वच्छन्द चिंतन जो परम्परा विनिमुक्त है भी और नहीं भी भारती को अन्य समीक्षकों से अलग कर देता है ।'[2] डा0 भारती के इसी समीक्षक के वैशिष्ट्य की ओर अंगुलि निर्देश करते हुए विजयबहादुर सिंह ने लिखा है - 'धर्मवीर भारती इसीलिए किसी एक संज्ञा के अन्तर्गत समेटे नहीं जा सकते । वह स्वच्छन्दवादी हैं भी, नहीं भी हैं । यही स्थिति उनके प्रयोगवादी होने की भी है । उनकी पहचान किसी प्रचलित और पूर्वनिर्धारित समीक्षा-पद्धति के सहारे सम्भव नहीं । प्रचलित समीक्षा का जो सौंदर्यशास्त्र है वह वर्गीकरण और विभाजन की रीति मानकर चलने को विवश है ।'[3]

डा0 भारती ने किसी भी कृति का व्यापक उदारतापूर्वक सर्वांगीण, वस्तु-परक एवं वैज्ञानिक अनुशीलन करने के लिये समीक्षा के प्रमुखतया तीन आयामों की

---

1- साहित्य -समीक्षा- बाबू गुलाबराय- पृ0 18

2- धर्मवीर भारती(सं0 लक्ष्मणदत्त गौतम), सुंदरलाल कथूरिया का लेख 'काव्य-चिंतन', पृ0 56, 56

3- वही- पृ0 240

वकालात करते हुए यह लिखा है 'एक कला-कृति पहले रूप में एक संचित शास्त्रीय परम्परा, जातीय सौन्दर्य-बोध और परम्परागत काव्य-शृंखला की विशिष्ट कड़ी होती है। दूसरे रूप में वह एक विशिष्ट समाज-व्यवस्था की सांस्कृतिक निधि होती है और उसका एक विशिष्ट मूल्य होता है। तीसरे रूप में वह एक व्यक्ति की, एक विशिष्ट क्षण की अनुभूति की शब्दात्मक अभिव्यक्ति होती है और कुछ विशिष्ट तत्वों से समन्वित होकर वह कला-कृति का महत्व प्राप्त करती है। किसी भी कला-कृति या प्रकृति का मूल्यांकन करते समय यदि इनमें से एक भी पक्ष की उपेक्षा की गई तो वह समीक्षा एकांगी बन जाती है।'[1] डा0 भारती की समीक्षा-दृष्टि भी प्राय: कृति-मूल्यांकन के तथाकथित आयामों को ही अपना निकष मानकर चलती है।

ऊपर विवेचित पृष्ठों में डा0 भारती की चिन्तन प्रणाली एवं उनकी समीक्षात्मक दृष्टि पर प्रकाश डाला गया है। अब यहां उनकी समीक्षात्मक कृतियों का अनुशीलन किया जा रहा है।

## समीक्षात्मक कृतियां

### प्रगतिवाद : एक समीक्षा :

प्रस्तुत रचना 'प्रगतिवाद : एक समीक्षा' (1949) में समीक्षक डा0 भारती ने आधुनिक साहित्य की मार्क्सवादी धारा का निष्पक्ष विवेचन प्रस्तुत किया है। डा0 भारती ने प्रगतिशीलता या प्रगतित्व को एक वह जीवित चीज और स्थायित्व गरिमा की दृष्टि से देखने-परखने का प्रयास किया है उनका सर्वथा यह मत रहा है कि आज का साहित्य राजनैतिक, साहित्यिक, आर्थिक या किसी भी प्रकार के सैद्धांतिक विचारों के अतिवादों से जकड़कर अपने विकास के गन्तव्य को नहीं पा सकता।

---

1- मानव मूल्य और साहित्य- पृ0 146

डा0 भारती की दृष्टि में प्रगति सर्वत्र सोद्देश्य रही है, केवल कोरी गतिशीलता या कोरी आदर्शवादी काल्पनिक प्रगति को वे प्रगति नहीं मानते। उन्होंने अपने प्रगतिशील विचारों, और मान्यताओं के माध्यम से जो एक स्वस्थ एवं समन्वयवादी जीवन-दर्शन प्रस्तुत किया है उसके मूल में समस्त मानव-जाति के विकास और मानवता की मुक्ति के पोषक तत्व निहित हैं। उन्हीं के शब्दों में 'मानवता को प्यार करने वाले एक ईमानदार कलाकार के नाते प्रगति मेरा ईमान है, मेरी कलम की जवानी है, लेकिन अपनी आत्मा में जिस सत्य का साक्षात्कार करता हूं उसे निर्भीकता से आगे रखना मेरा कर्तव्य है। ----- एक सत्य के खोजी साहित्यिक के लिए मानवीय सत्य का महत्व किसी भी वाद से ज्यादा है, इसीलिए मुझे वाद का विरोध करना पड़ता है, प्रगति के समर्थन में आवाज उठानी पड़ती है, क्योंकि मैं देख रहा हूं 'वाद' की जंजीरों ने 'प्रगति' के कदम जकड़ लिये हैं।'[1] डा0 भारती ने कला को युग-युगों तक जीवित रहनेवाली चीज माना है। इस रूप में वे साहित्य को एक गम्भीर साधना, मानकर चले हैं। यही कारण है कि उन्होंने प्रचारवादी सिद्धान्तों, वादों अथवा मानवीय सत्य की अवहेलना करके स्वार्थनिहित दलीय प्रयोगों को प्रस्थापित करनेवाले वैचारिक निकायों या राजनीतिक सत्ताओं को प्रगति में बाधक समझा है। इसी आधार पर वे कहते हैं 'मानव हमारा देवता है, हमारा उपास्य है, हमारा ईश्वर है। मार्क्स हो या ईसा, लेनिन हों या गांधी, सभी मानवता की जयमाल में गुंथनेवाले गुलाब हैं, और हम हरेक का तबस्सुम, हरेक का सौरभ स्वीकार करने के पक्ष में हैं, मगर किसी की सीमा में बंधना नापसन्द करते हैं। मार्क्स हों या ईसा, दोनों से बड़ा मानव है। उपनिषद हों या कम्यूनिस्ट मेनीफेस्टो, मानवजीवन का सत्य दोनों से बड़ा है। मानव-जीवन का सत्य एक किरण है, कला इन्द्रधनुष, जिसमें मूल सत्य अनेक रंगों में खिल उठता है। कहीं वह कल्पना है, कहीं यथार्थ, कहीं ट्रेजडी, कहीं कामेडी, कहीं आंसू, कहीं हंसी, कहीं अन्तर्विरोध, कहीं समन्वय। मानव-जीवन के सत्य को एक शैली, एक रूप, एक सम्प्रदाय, एक मजहब या एक वाद में बांधना हास्यास्पद है।'[2] इससे यह

---

1- प्रगतिवाद : एक समीक्षा- भूमिका- पृ0 2

2- वही- पृ0 216

स्पष्ट हो जाता है कि डा0 भारती के प्रगतिशील विचार मानवता के उदात्त मूल्यों पर आधारित हैं। इसीलिए जहां कहीं भी उन्होंने मानव-प्रगति को किसी सैद्धांतिक या दार्शनिक मतवादों से जकड़ते हुए पाया है वहां उन सिद्धांतों की संकीर्णताओं तथा अतिवादिताओं का निर्भीकतया खण्डन किया है। मार्क्सवादीय सिद्धांतों पर आधारित प्रगतिवादी विचारों में उन्होंने उसकी कमियों, दुर्बलताओं तथा अपरिपक्वता के दोषों का तटस्थतापूर्ण विश्लेषण किया है। जहां तक कार्ल मार्क्स ने साम्यवाद को एक वैज्ञानिक रूप देकर पूंजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध मानवता के स्वस्थ विकास की उदात्त पृष्ठभूमि में नए जीवन की जो एक आदर्शपरक कल्पना की थी, वहां तक तो रूस के कलाकारों ने उसका स्वागत किया ; किन्तु जब उसके अनुयायियों ने मार्क्सवाद के व्यापक उद्देश्य की अवहेलना कर साहित्य को दलगत राजनीति का अस्त्र बना लेना चाहा तो उसके परिणामस्वरूप मार्क्सवादी (प्रगतिवादी) साहित्यिक विचारधारा भी संकीर्णता, एकांगिकता और विकृतियों से भर गई। अपनी निष्पक्ष दृष्टि से इसके लिए डा0 भारती ने कहा है "मार्क्स का तात्पर्य था पूंजीवादी विकृतियों के प्रति विद्रोह और उसके स्थान पर एक स्वस्थ संस्कृति का निर्माण, मगर मार्क्स से भी सौगुना अधिक मार्क्सवादी, उसके अनुयायियों ने प्रगतिवाद को एक व्यापक जीवनदायी सिद्धान्त नहीं रहने दिया और उसे एक कट्टर कठमुल्लेपन में परिवर्तित कर दिया।"[1] उदाहरण के रूप में अनेक प्रमाणों के परिप्रेक्ष्य में डा0 भारती ने मार्क्सवादी (प्रगतिवादी) विचारधारा का दिग्दर्शन कराते हुए यह निर्देशित किया है कि उसने कहीं सांस्कृतिक परम्परा के स्वस्थ तत्वों का गला घोंट दिया तो कहीं साहित्य को एक मात्र राजनीतिक प्रचार का प्रमुख साधन ही सिद्ध करने का प्रयास किया। इस प्रकार के कठोर नियंत्रण के फलस्वरूप उसमें स्त्री और पुरुष के सहज आकर्षण जन्य प्रेम, तथा स्वतंत्र व्यक्तित्व के विकासशील स्तर पर साहित्यकार की

---

1- वही- पृ0 13

कल्पना और उसकी रागात्मक भावनाओं के प्रकाशन के लिए कहीं भी स्थान नहीं था। उसके कला के बाह्य पक्ष भाषा, शैली आदि की सुंदरता को भी छीन लेना चाहा। येसेनिन और मायकावस्की के काव्य-सृजन और चिन्तन के बीच जो अन्तर था वह राजनीतिक अनुशासन का परिणाम था। येसेनिन अपनी स्वतंत्र अनुभूतियों पर आधारित मधुरतम रोमैण्टिक गीतों का गायक कवि था, और मायकावस्की एक कवि और सैनिक में कोई अंतर नहीं समझता था। इस प्रकार मार्क्सवादीय सोवियट साहित्य(प्रोलेटेरियट साहित्य) केवल नारेबाजियों का अखाड़ा मात्र बन कर रहा गया। 'प्रवीन, स्थायी और शाश्वत साहित्य तथा प्रगतिवादी' प्रयोग शीर्षक निबंध में लेखक ने रूसी-साहित्य चिंतक आवरबाख, मायकावस्की, प्लेखनाव आदि की संकीर्ण-मनोभूमि पर आधारित वैचारिकता का विश्लेषण करते हुए प्राचीन, स्थायी और शाश्वतता के स्वस्थ दृष्टिकोणों पर आधारित स्तालिन, लिफशित्ज आदि की उदारतावादी चिन्तनधारा को प्रगतिशील घोषित किया है। उदाहरण के रूप में प्लेखनाव उस संकीर्ण समाजवादी दृष्टिकोणों का पक्षधर था जिसके अनुसार साहित्य का मूल्य सर्वथा सामयिक और वर्गवादी दृष्टि में सीमित था, और व्यक्ति की या कलाकार की स्वतंत्र सत्ता का कोई महत्व नहीं था।[1] ठीक संकीर्णवादी चिंतकों की विचारधारा के विपरीत लेखक ने रूस के ही साहित्यकारों और विचारकों को महान सिद्ध किया है जिन्होंने प्राचीन साहित्य के महत्व की प्रतिष्ठा की और स्थायी साहित्य के सृजन के लिए व्यापक भूमिका तैयार की। लिफशित्ज ने प्लेखनाव की संकीर्ण विचारधारा का विरोध स्वयं मार्क्स की ही विचारधारा से किया 'मार्क्स ने अपनी 'क्रिटीक आफ पोलिटिकल इकनामी' में एक स्थान में लिखा था - "इस बात को समझना बहुत मुश्किल नहीं कि ग्रीक तथा अन्य शाश्वत साहित्य सामाजिक प्रगति के डोरों से बंधा हुआ था, लेकिन उलझन इस बात को समझने में पैदा होती है कि इतने दिनों बाद आज भी उनसे उतनी ही रसानुभूति होती है,

---

1- प्रगतिवाद : एक समीक्षा- पृ0 52-53

उतना ही आनंद मिलता है और अब भी वे कला के इतने ऊँचे आदर्श बने हुए हैं कि उनकी तरह पूर्णता पाना कठिन मालूम देता है।"[1]

लेखक ने प्रगतिवादी साहित्य में मानवतावादी शाश्वत मूल्यों, संस्कृति की स्वस्थ परम्परा, व्यक्तिगत भावनाओं, व्यक्ति-स्वतंत्रता तथा कलात्मक तत्वों के प्रवेश के लिए जोरदार अपील की है। भारतीय प्रगतिवाद भी अंतत: रूस की कम्यूनिस्ट पार्टी के सिद्धांतों का कोरा प्रचारात्मक साधन बन कर रह गया। इस बात पर लेखक ने बड़ा दुख प्रकट किया है।[2] यही बात प्रगतिवादी साहित्य में कलात्मक तत्वों के अभाव तथा कल्पना और यथार्थ के बीच समन्वय के न होने में लेखक को खटकी है। 'हिन्दी के प्रगतिवादी लेखकों ने सिवा छायावाद के विरुद्ध लेख लिखने के, कला के तत्व को समझने का जरा भी प्रयास नहीं किया, टेकनीक को सम्हालने की समझदारी नहीं दिखाई और सिवा रांगेय राघव, के किसी भी हिन्दी प्रगतिवादी लेखक की टेक्नीक में न मौलिकता है न नवीनता, न प्रभाव और न वह गुण जो उसे स्थायी साहित्य बना सके।"[3]

मार्क्सवादी साहित्य में केवल समष्टिगत समस्याओं को ही प्रमुख स्थान दिया गया था, इससे व्यक्ति का अस्तित्व उपेक्षित ही रहा। फलत: वैयक्तिक मनोविज्ञान को भी एक बोर्जुआ ज्ञान करार दिया गया। लेखक ने प्रगतिवादी साहित्य में व्यक्ति के महत्व की प्रतिष्ठा का प्रयास किया है। इस संदर्भ में लिखा है 'साहित्य का आधार व्यक्ति ही है। ---एक उपन्यासकार अपने उपन्यास में जब

-------------------------

1- वही- पृ0 56

2- वही- पृ0 118

3- वही- पृ0 127

एक व्यक्ति का चरित्र उठाता है तो उस चरित्र के माध्यम से वह एक जीवन दर्शन देता है ,एक विशेष व्यक्तित्व रखता है और परिस्थितियों से उसका संघर्ष या सन्तुलन दिखलाकर हरेक पाठक के सामने जीवन की नई दिशा रखता है। ---जिस साहित्य में अंतर्जगत (मनोविज्ञान) के माध्यम से आनेवाला यह जीवन-दर्शन नहीं होता वह साहित्य कभी भी प्रथम श्रेणी का साहित्य नहीं कहा जा सकता।"[1] लेखक का यह मत उन सोवियट लेखकों की संकीर्ण दृष्टि को उजागर करता है कि जो मनुष्य को केवल लाल सेना का सिपाही, कारखाने का मजदूर या पार्टी का कार्यकर्ता मानकर उसे एक व्यक्ति के रूप में नहीं देखते। मार्क्स ने बाह्य परिस्थितियों के निर्माण द्वारा स्वर्ग की कल्पना की किन्तु उससे मनुष्य की आन्तरिक निर्माण की आवश्यकता उपेक्षित ही रही। जब तक मनुष्य के अन्तर्जगत का निर्माण करनेवाली कोई व्यवस्था नहीं होगी तब तक मार्क्सवाद का बाह्य निर्माण अधूरा है। इसके लिए लेखक ने भारतीय अध्यात्मवाद का समर्थन किया है। "हर युग, हर देश का महानतम साहित्य अध्यात्मवादी रहा है। यह अध्यात्म जीवन की परिस्थितियों से दूर भागनेवाला नहीं है, और न मानसिक पलायनवाद ही है। यह वह अध्यात्म है जो मानव को बल देता है, उसे नवीन निर्माण की ओर प्रेरित करता है, उसे परिस्थितियों से लड़कर नये जीवन-दर्शन की स्थापना करने का साहस और शक्ति देता है और मानव को देवता बनाता है।"[2] लेखक ने मानवतावादी धर्म के तथाकथित परिप्रेक्ष्य में ही धर्म और ईश्वर की समन्वय वादी व्याख्या की है। लेखक ने प्रगतिवादी साहित्य में धर्म की रूढ़ियां और खोखली परम्पराओं का तिरष्कार करते हुए अपने इस आग्रह पर बल दिया है कि "प्रगतिवाद को उस महान धर्म की प्रगतिवादी परम्परा का अर्थ समझना होगा जिसने आज तक भारत की जनता को सबल और दृढ़ बनाया है। यह ठीक है कि धर्म के एक पहलू ने, भाग्यवाद और जातिभेद ने, परलोकवाद और वैराग्यवाद ने हमारी जनता को जीवन से

---

1- वही- पृ0 127

2- वही- पृ0 143, 144

विमुख किया, लेकिन हम यह भी नहीं भूल सकते कि रामानंद ने जाति-व्यवस्था का विरोध किया था, सूर की गोपियों ने वैराग्यवाद की धज्जियां उड़ाई थीं, भगवान तथागत ने उच्चवर्गीय ब्राह्मण तानाशाही के खिलाफ विद्रोह किया था, और भारत में जनप्रिय बननेवाले दोनों धर्म, बौद्ध और वैष्णवतत्व, दोनों ही प्रगतिवादी थे। वैष्णव धर्म की ~~जनप्रियता~~ जनप्रियता का तो मुख्य आधार ही यह था कि वैष्णव आचार्यों ने किसी रहस्यमय लोक से ईश्वर को हटाकर जन-जीवन की व्यापक पृष्ठभूमि में, ग्राम-गोचर भूमि, ग्राम कुटीर और ग्रामीण हृदय में ईश्वरत्व की स्थापना की थी और एक समय था जबकि वैष्णव सन्तों की दृष्टि में जनचेतना और ईश्वरचेतना आपस में घुल-मिल गई थी।"[1]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि डा0 भारती ने जहां एक ओर मार्क्सवादी विचारधारा पर आधारित प्रगतिवादी साहित्य की एकांगिकता और अधूरेपन को अनावृत्त किया है वहीं मानवतावादी पृष्ठभूमि में प्रगतिवाद को ऊंचा उठाने के लिए मार्ग भी निर्देशित किया है। उनकी वैचारिक स्थापनाओं से यह ज्ञात हो जाता है कि वे प्राचीन और नवीन राष्ट्र और विश्व, अतीत और वर्तमान, व्यक्ति और समाज, के समन्वय के लिए प्रगतिशीलता के उन स्वस्थ और चिर स्थायी तत्वों के पोषक तथा पक्षधर हैं, कि जिन पर चलकर प्रत्येक राष्ट्र का व्यक्ति ; संस्कृति, धर्म, या साहित्य अपने विकास का पथ पा सकता है।

## मानव मूल्य और साहित्य :

प्रस्तुत पुस्तक में मानव मूल्य के संदर्भ में साहित्य का विश्लेषण, परीक्षण और आकलन किया गया है। इसके तीन खण्ड हैं। प्रथम में मानवीय तत्व का विघटन,

---

1- वही- पृ0 158, 159

द्वितीय में नयी मर्यादाओं का उदय तथा तृतीय में विविध संदर्भों में नये मूल्यों पर प्रकाश डाला गया है।

प्राय: मानव मूल्यों के संदर्भ में साहित्य को बहुत कम ही मूल्यांकित करने का प्रयास किया गया है। लेखक ने मानवीय मूल्यों को साहित्य से बाहर की वस्तु माना नहीं है। इसीलिए उसने मानव की गरिमा, उसकी मुक्ति या उसके अन्तरात्मा के विकास के साधक मानवता के सहज रागात्मक मूल्यों को ही अपनी दृष्टि के केन्द्र में रखकर साहित्य को प्रभावित करनेवाली राजनीतिक, धार्मिक, दार्शनिक आदि बाहरी शक्तियों और चिन्तन-धाराओं कालेखा-जोखा प्रस्तुत किया है। लेखक ने मध्यकालीन एवं आधुनिक इतिहास-क्रम और काल-प्रवाह के सन्दर्भ में मनुष्य को निरन्तर निरर्थकता की ओर अग्रसर करनेवाले सांस्कृतिक संकट या मानवीय मूल्यों के विघटनवादी तत्वों का विशद विश्लेषण ब करते हुए यह कहा है -"समस्त मध्यकाल में इस निखिल सृष्टि और इतिहास-क्रम का नियन्ता किसी मानवोपरि अलौकिक सत्ता को माना जाता था। ----- इतिहास या काल-प्रवाह उसी मानवोपरि सत्ता की सृष्टि का -माया रूप में या लीला रूप में।

ज्यों-ज्यों हम आधुनिक युग में प्रवेश करते गये त्यों-त्यों इस मानवोपरि सत्ता का अवमूल्यन होता गया। मनुष्य की गरिमा का नये स्तर पर उदय हुआ और माना जाने लगा कि मनुष्य अपने में स्वत: सार्थक और मूल्यवान् है - वह आन्तरिक शक्तियों से सम्पन्न, चेतन-स्तर पर अपनी नियति के निर्माण के लिए स्वत: निर्णय लेनेवाला प्राणी है।------लेकिन जहां एक ओर सिद्धान्तों के स्तर पर मनुष्य की सार्वभौमिक सर्वोपरि सत्ता स्थापित हुई, वहीं भौतिक स्तर पर ऐसी परिस्थितियां और व्यवस्थाएं विकसित होती गईं तथा उन्होंने ऐसी चिन्तनधाराओं को प्रेरित किया जो प्रकारान्तर से मनुष्य कीसार्थकता और मूल्यवत्ता में अविश्वास करती गयी।"[1] मानव

---

1- मानव मूल्य और साहित्य , भूमिका- पृ0 9, 10

का अवमूल्यन करनेवाली ऐसी विचारधाराएं समस्त संसार में विभिन्न धरातलों पर विभिन्न रूपों में प्रकट हुई हैं। डा० भारती ने इनसे उत्पन्न व्यापक सांस्कृतिक संकट के परिप्रेक्ष्य में साहित्य के मूल्य और महत्वों की सही-सही जांच करते हुए नये मूल्यों की विकास भूमिका पर अपने नवमानवतावादी विचारों कीप्रतिस्थापना का प्रयत्न किया है।

अपनी मानवतावादी समस्त वैचारिक स्थापनाओं के केन्द्र में डा० भारती ने 'विवेक' को एक मूल्य के रूप में प्रतिष्ठित किया है। इसी विवेक की रक्षा- स्थिति के समस्त प्रयासों में वे मानवीय गौरव के अर्थों का अन्वेषण करते हैं। उनकी दृष्टि में 'मानवीय गौरव के अर्थ यह हैं कि मनुष्य को स्वतंत्र, सचेत, दायित्वयुक्त माना जाय जो अपनीनियति, अपने इतिहास का निर्माता हो सकता है। इसके लिए उसके विवेक और मनोबल को सर्वोपरि और अपराजेय माना जाय।'[1] जब-जब समस्त मूल्य-मर्यादाएं तथाकथित विवेक द्वारा आचरित नहीं होने पाई तब तब मानवता की हत्याएं होती रही हैं। डा० भारती ने मनुष्य के आचरणों, विचारों और व्यवहारों को उसके सदासद विवेकपूर्ण संकल्पों का परिणाम माना है। मानव की प्रगति दायित्वपूर्ण विवेक या आचरणसे ही की जा सकती है। 'चूंकि प्रगति का विधायक है मनुष्य का स्वतंत्र विवेकपूर्ण आचरण। अतः इतिहास में जिन प्रतिक्रियावादी राजसत्ताओं, धार्मिक सम्प्रदायों या अर्थ-व्यवस्थाओं ने मनुष्य का विकास और प्रगति रोकनी चाही है उसका यही प्रयास रहा है कि किसी तरह मनुष्य के स्वतंत्र विवेक को भौतिक अभाव, कुरुचि या अनुशासन द्वारा पराभूत कर उसकी क्रिया को विवेक से रहित पागलपन, मूर्छा या भावावेश की क्रिया मात्र बना दिया जाय।'[2] ऐसी स्थितियों में मनुष्य वस्तुधर्मी या पशुधर्मी बन जाता है उसकी स्वतंत्रता का कोई भी मूल्य नहीं रहने पाता।

---

1- वही- पृ0 21

2- वही- पृ0 114

डा0 भारती के मतानुसार पिछली दो शताब्दियों में उभरनेवाले तमाम जीवन-दर्शनों ने चाहे वह वर्तमान के मनुष्य से उसके गौरव का अपहरण करनेवाले नीत्शे का हो, चाहे वह मनुष्य में नैतिक या अनैतिक कोई वस्तु नहीं होती मानकर मनुष्य की आत्मा या उसके गौरव का दारुण करनेवाले आस्कर वाइल्ड का दर्शन हो, चाहे वह मनुष्य से उसके विकल्प को या उसके चिन्तन-स्वातंत्र्य को छीनकर उसे पार्टी के यांत्रिक अनुशासन में बांधनेवाले मार्क्स का हो या फिर वह दर्शन दलीय स्वार्थ नीतियों पर आधारित पूंजीवादी, फासिस्ट या कम्युनिस्ट का ही क्यों न हो। इन सभी वैचारिक सत्ताओं ने अपने अविवेकवाद के द्वारा मनुष्य को अन्तरात्मा से रहित करते हुए उसके स्वातंत्र्य को पूरी तरह से कुचल देना चाहा। अत: कहना न होगा कि मानवीय तत्वों का विघटन मनुष्य को हिप्नोटाइज कर उसके विवेक को हरनेवाले इन्हीं मतवादों का परिणाम है।

यह अवश्य है कि मध्यकाल में ईश्वर को सर्वोपरि सत्ता मानकर मनुष्य की सार्थकता उस सत्ता से अधिकाधिक तादात्म्य स्थापित करने में मानी गई किन्तु तब भी 'सृष्टि के केन्द्र में मनुष्य' को मानकर उसकी सार्थकता को घोषित करनेवाली भावना बीच-बीच में मध्यकाल के साधकों या सन्तों में उदित हुई थी। लेखक के मतानुसार 'मनुष्य की संपूर्ण प्रकृति को भोग के स्तर पर परिशोधित करने का व्रत लेनेवाली तंत्र-साधना, 'मनुष्य से बड़ा कुछ नहीं है' की उदात्त घोषणा करनेवाली वैष्णव भक्ति-साधना और कितनी ही अन्य मध्यकालीन धर्म-साधनाएं इसी मानवीय गौरव को अपनी-अपनी सीमाओं के बावजूद प्रतिष्ठित कर रही थीं।"[1]

तात्पर्य यह है कि मध्यकालीन तत्व चिंतकों ने अपने-अपने ढंग से मानवीय मूल्यों की प्रतिष्ठा का प्रयास किया था।

---

1- वही- पृ0 61

आधुनिक युग में मानव की प्रतिष्ठा का प्रयास पश्चिम के नवमानवतावादी चिंतकों तथा मनो-विश्लेषणवादियों ने किया। इससे विवेकपूर्ण दायित्व भावना के आधार पर नये मूल्यों की खोज की गई। 'आचरण की मर्यादा- स्वातंत्र्य, और स्वातंत्र्य की मर्यादा?' शीर्षक निबंध में डा० भारती ने लिखा है - 'पाश्चात्य वैयक्तिकवादी चिन्तकों की भाषा में यह वैयक्तिकता मूल्यों के ग्रहण और विकास की दिशा में स्व-संचालित गति है, जिसमें स्वातंत्र्य और दायित्व का आन्तरिक विकासोन्मुख समन्वय रहता है। गीता की भाषा में विनोबा ने स्वातंत्र्य और सामाजिक मूल्यगत दायित्व के इस समन्वय को स्वधर्म (स्व+धर्म) की संज्ञा दी है।'[1] डा० भारती इस दृष्टि से पश्चिम की वैयक्तिक स्वातंत्र्य भावना पर आधारित नवमानवतावादी विचारधारा से जुड़े हुए हैं वहां मानवता के शाश्वत तत्वों पर आधारित वेद एवं गीता द्वारा विहित मानवतावादी विचारधारा से भी। कतिपय विद्वान उन्हें पश्चिम की वैयक्तिकतापरक मानवतावादी घोषित करते हैं। किन्तु उनका व्यक्ति चिंतन समष्टि-चिन्तन का ही पर्याय है, जब वे कहते हैं - 'पश्चिमी वैयक्तिकतापरक विचार-सरणियां वैयक्तिकता के जिस पक्ष को विकास की पूर्ण स्वतंत्रता देने का आग्रह कर रही हैं उसका एक अनिवार्य प्रगतिपरक सामाजिक महत्व है।'[2] उनकी दृष्टि में वैयक्तिक मूल्य वह होता है - 'जो व्यक्ति-विशेष की संवेदनाओं और अभिरुचियों का इष्ट हो तथा सामाजिक, राष्ट्रीय तथा चरम मूल्यों का विरोधी न हो।'[3]

डा० भारती ने तथाकथित मानवतावादी पृष्ठभूमि में साहित्य के श्रेष्टत्व या महान होने की जांच की है। उन्होंने साहित्य-सृजन का मुख्याधार मनुष्य के लौकिक यथार्थ को ही माना है।[4] लेखक ने हिन्दी साहित्य का सर्वेक्षण करते हुए यह कहा है कि

---

1- वही- पृ0 128

2- वही- पृ0 123

3- दायित्व और स्वातंत्र्य : अविच्छिन्न मूल्य, सम्पादकीय, आलोचना, जनवरी-1956 पृ0 2

4- मानव मूल्य और साहित्य- पृ0 76

मध्यकाल में मानव का स्थान सर्वोपरि सत्ता ने ले लिया था और आधुनिक काल में दिव्यता का लबादा-ओढ़े नायकों ने। इसके विपरीत उन्होंने साहित्य में सामान्य-जन की प्रतिष्ठा पर बल दिया है। साहित्यकार के दायित्व को निर्देशित करते हुए वे लिखते हैं 'वे (साहित्यकार) दिव्यता के लबादे उतारकर सामान्य साधारण जन के साथ आ खड़े हों, उसी साधारण जन के साधारण परिवेश में उसी के धरातल पर प्रखर विवेक, सम्पूर्ण संवेदना और अदम्य साहस से मूल्यों की खोज करें और जो भी मूल्य उपलब्ध करें उसके प्रति अपने कला-व्यक्तित्व को निस्संकोच समर्पित कर दें।[1] स्पष्ट है कि डा० भारती ने आधुनिक साहित्य में साधारण जन की मुक्ति और उसके गौरव की महद चेष्टा की है। आज राष्ट्र स्वतंत्र है किन्तु वह अद्यावधि मानसिक या वैचारिक पराधीनता का दास ही बना हुआ है। अतः भारती लिखते हैं कि 'भारत की स्वतंत्रता तब तक सार्थक नहीं है जब तक सामान्य जन स्वतंत्र नहीं है। सामान्य जन के स्वतंत्र होने का अर्थ यह नहीं कि उसे भर पेट भोजन, जरूरत के मुताबिक कपड़ा मिल जाय। यह भी है तथा इसके अलावा और बहुत कुछ भी है। उनके मानस में जो अन्ध रूढ़ियां हैं, कुण्ठाएं हैं, मूर्च्छनाएं हैं, मृत परम्पराएं आदि प्रवृत्तियां हैं, जिसके कारण वह युग-युग से दास बनता चला आया है - उनसे भी उन्हें मुक्त करना है। इस दृष्टि से स्वातंत्र्य न केवल एक बाह्य परिस्थिति है, वरन् एक आन्तरिक मूल्य भी है।"[2] इससे स्पष्ट है कि लेखक ने विवेक के मूल्य को मानवता की दिशा में बहुत ही सूक्ष्मता एवं सम्यक् रीति से देखते-परखते हुए साहित्य के उचित मूल्यों की ओर दृष्टिनिक्षेप किया है। जहां भी विवेक का ह्रास हुआ है वहां साहित्य से साधारण जन उपेक्षित ही रहा है। इसीलिए डा० भारती ने हिन्दी के प्रसंग में किंचित रूप में रहस्यवाद और विशेषरूप में छायावाद और प्रगतिवाद के प्रति अपना असन्तोष व्यक्त किया है। साहित्य की

---

1- वही- पृ0 90

2- वही- पृ0 74

नयी मर्यादा की ओर संकेत करते हुए वे कहते हैं - "साहित्यकार का यह नया दायित्व इतिहास-निर्माण का दायित्व है, मानव-संस्कृति के मूल्यात्मक विकास का दायित्व है और सामान्य व्यक्ति के दायित्व से कई गुना अधिक जटिल दायित्व है, क्योंकि साहित्यकार की पदाधरता और संघर्ष विवेक का स्तर बहुत गहरा है।"[1] इसी प्रकार भाषा को भी हमारे रागात्मक मूल्यों की अभिव्यक्ति का सार्थक माध्यम मानते हुए यह कहा है - "साहित्य में शब्द तभी समर्थ, प्रेषणीय और प्राणवान बनते हैं जब उनमें मानवीय मूल्य आन्तरिक रूप से प्रतिष्ठित रहता है। अन्यथा वे बांस पर लटकाये गये चीथड़ों की तरह पशुओं के लिए भयोत्पादक और विवेकपूर्ण मनुष्य के लिए हास्योत्पादक बन जाते हैं।"[2]

डा0 भारती ने पूर्व विवेचित मानवीय मूल्यवादी साहित्यिक दृष्टि के परिप्रेक्ष्य में 'समीक्षा के आयाम', 'सृजन-प्रक्रिया का मानवीय धरातल', 'उपन्यास और आत्मान्वेषण', 'नयी कविता और दायित्व की आन्तरिकता' जैसे शीर्षकों के अन्तर्गत नये यथार्थ की विवेकपूर्ण उपलब्धियाँ और दिशाएं क्या हो सकती हैं, का अत्यन्त विस्तृत विश्लेषण पूर्वक विचार-मंथन प्रस्तुत किया है। नयी कविता को उन्होंने 'अर्पित रसना' की संज्ञा से अभिनिहित किया है। उनकी दृष्टि से नयी कविता का अर्पण 'निस्सन्देह मानव-मूल्यों के प्रति' है।

कहना न होगा कि पिछले दो महायुद्धों की दारुण प्रतिक्रियाओं के फलस्वरूप जीवन के बाहरी तथा भीतरी रूपों में जो एक अप्रत्याशित परिवर्तन आया, उसका चित्रण साहित्य के अन्तर्गत अस्तित्ववादी विचारधारा के परिप्रेक्ष्य

---

1- वही- पृ0 138

2- वही- पृ0 139

में किया गया । डा० भारती भी तथाकथित जीवन-दर्शन से अत्यधिक प्रभावित रहे हैं । उनके सृजनात्मक चिन्तन की प्रक्रिया में जिस मूल्यवादी जीवन दर्शन की मानवतावादी पृष्ठभूमि उपलब्ध होती है उससे उक्त बात की पुष्टि हो जाती है । इस दिशा में 'मानव मूल्य और साहित्य' उनकी महत्वपूर्ण उपलब्धि है । अपने विवेक के अनुसार कार्य करने की और स्वतंत्रतया व्यक्तित्व निर्माण करने की प्रेरणा अस्तित्ववादी दर्शन देता है । यही कारण है कि सृजनात्मकता तथा वैचारिकता के दोनों ही बिन्दुओं पर डा० भारती ने तथाकथित जीवन दर्शन की प्रतिष्ठा का प्रयास किया है । अपने इस प्रयास में वे निषेधवादी नहीं हैं । उनका मानवतावाद निष्क्रिय नहीं है । मानवता की चिरकालीन रक्षा एवं भारत के स्वतंत्र रूप से अस्तित्व विकास के लिए उन्होंने जिस नई आत्मा की खोज का प्रयास किया है उसमें आधुनिकता के अनुसार धर्म, ईश्वर, अर्थ, राजनीति, समाज, व्यक्ति आदि विषयक नई व्याख्याएं उपलब्ध होती हैं । अपने मूल्य-चिन्तन की प्रक्रिया में उनका समन्वयवादी दृष्टिकोण ही मुखरित हो पाया है । 'जनपथ' को 'प्रभुपथ' घोषित करनेवाला उनका पथ 'ईश्वरत्व' के स्थान पर 'मानवत्व' की प्रतिष्ठा करता है । मानवीय प्रतिष्ठा की यह बात चाहे 'मानव हमारा देवता है । मानव से बड़ा कोई नहीं ।" कहनेवाले गोर्की की हो या चाहे 'न मनुष्यात हि श्रेष्ठतरं किंचित्' को माननेवाले महाभारतकार की हो, या फिर 'अयमात्मा परानन्द : परम प्रेमास्पदम्' यत: ।" को प्रतिपादित करनेवाले उपनिषदों की हो ।

## अनूदित साहित्य

### अनुवाद से तात्पर्य एवं उसकी गुणवत्ता का आधार :

अपने विविध साहित्यिक रूपों की भांति ही डा० भारती का एक अन्य रूप अनुवादक भारती का भी है । उन्होंने पद्य तथा गद्य के दोनों ही क्षेत्रों में क्रमश:

`देशांतर` एवं `आस्कर वाइल्ड की कहानियाँ` के रूप में अनुवाद-कार्य किया है।

वस्तुत: अनुवाद मूल कृति के `पुनर्सृजन की वह प्रक्रिया है जिसमें अनुवादक मूल कवि की भावना, कल्पना तथा अभिव्यंजना के यथावत् सौष्ठव को ठीक तरह से रूपान्तरित करने का बौद्धिक व्यायाम करता है। भावों के पुनर्सृजन की इस प्रक्रिया में वास्तविक सौंदर्य के `क्षरण` की अधिक सम्भावना होती है। और इसी स्तर पर अनुवाद के कार्य में अनेक प्रकार की कठिनाइयां उत्पन्न हो जाती हैं। इसी स्थिति की ओर संकेत करते हुए डा० भारती ने लिखा है - `मूल कृति में और उसके अनुवाद के बीच में दीवारें बहुत बड़ी रहती हैं। पृथक संस्कार, पृथक काव्य-रूढ़ियां, पृथक बिम्ब समूहों को जोडनेवाला तत्व बहुत क्षीण रहता है। और ऐसी स्थिति में सफल अनुवाद प्रस्तुत करें तो वह शाब्दिक अनुवाद नहीं हो पाता और शाब्दिक अनुवाद प्रस्तुत करें तो वह सफल नहीं हो पाता। और काव्य-कला ऐसी कला है जिसमें शब्द बहुत अधिक महत्वपूर्ण हैं।"[1] श्री जैनेन्द्रकुमार ने अनुवाद से गृहीत तात्पर्य को स्पष्ट करते हुए कहा है `अनुवाद का मतलब है बात को एक से दूसरी भाषा में उतार कर कहना। आवश्यक है कि वह बात दूसरी भाषा वाले के पास पहुंच जाय। बात का भाव सही-सही पहुँचे और बीच में कहीं वह अपना प्रभाव भी न खोये। जिस मात्रा में यह परिणाम आता हो, उसी मात्रा में अनुवाद सफल कहा जा सकता है।"[2] श्रीकान्त वर्मा ने कविता के अनुवाद की इसी समस्या को ध्यान में रखते हुए उमदा अनुवाद उसे कहा है `जो मूल रचना की भ्रान्ति खड़ा करता है। इस तरह के अनुवाद में कविता नष्ट नहीं होती। अनुवाद की प्रक्रिया में मौलिकता अर्थात् कविता का जो अंश नष्ट होता है उसकी क्षति-पूर्ति अनुवादक उस कविता से कर देता है, जिसे वह अनुवाद

---

1-डा० भारती `देशान्तर` (द्वि० सं० 1965) वक्तव्य- पृ० 9

2- दे० अनुवाद कला : कुछ विचार सं० आनंद प्रकाश खेमाणी तथा वेदप्रकाश में जैनेन्द्र कुमार का `अनुवाद : एक विचार` शीर्षक लेख, पृ० 12

के बहाने रचता है। इस परिणिति में कविता और भी विविध होकर उभरती है। '[1] डा0 भारती ने भी अनुवाद की इसी स्थिति की ओर एक अनुवाद के मत को उद्धृत करते हुए कहा है 'काव्यानुवाद की प्रकृति बिलकुल स्त्री-प्रकृति होती है। जितनी सुन्दर होगी उतनी ही आवश्वसनीय।" स्त्री-प्रकृति के बारे में तो इस कथन से पूर्णतया सहमत हूं पर अनुवादों के सम्बंध में मेरे ख्याल में एक बीच का रास्ता निकालने की गुंजाइश है। मैंने भरसक कोशिश की है कि अनुवाद सुन्दर भी बनें और विश्वसनीय भी।"[2] स्पष्ट है कि काव्यानुवाद की प्रक्रिया में एक बीच का रास्ता खोज निकालते समय अनुवादक को अपनी बौद्धिक कुशलता के द्वारा उस विवेक रचना का प्रयास भी करना पड़ता है जिससे उसका अनुवाद मूल कृति का रसास्वादन तो अपने पाठकों को करा सके साथ ही वह एक स्वतंत्र रचना का आनंद भी दे सके। वस्तुत: श्रेष्ठ अनुवाद की सफलता उसकी परस्पराश्रित इसी गुणवत्ता की मात्रा में रहती है।

## अनूदित कृतियां : एक मूल्यांकन

### (1) देशान्तर :(1960) :

प्रस्तुत संकलन में यूरोप और अमेरिका (उत्तर और दक्षिण) के इक्कीस देशों की एक सौ इकसठ कविताओं की हिन्दी छायाएं प्रस्तुत की हैं। अनुवाद प्राय: उन कविताओं के अंग्रेजी अनुवादों से ही किये गये हैं। डा0 भारती ने आधुनिक सन्दर्भ में अनुवाद को दो सांस्कृतिक धाराओं में परस्पर के आदान-प्रदान का एक उपयोगी माध्यम माना है।

---

1- श्रीकान्त वर्मा : 'कविता के अनुवाद की समस्या : 'धर्मयुग', 14जनवरी 1968पृ0 16

2- 'देशान्तर' वक्तव्य, पृ0 9

प्रस्तुत संकलन के अनूदित काव्यों की प्रेरणा की ओर संकेत करते हुए उन्होंने लिखा है - 'ये कविताएं केवल उन कवियों की हैं जो 20वीं शताब्दी में प्रख्यात हुए। आज जिसे हम आधुनिक काव्य-बोध कहते हैं, उसे निर्मित करने में इन सबका हाथ रहा है।'[1] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि विदेशी कवियों में आधुनिक काव्य-बोध जो कि आज के सांस्कृतिक संकट के विश्व व्यापक स्तर पर विभिन्न भावों, कल्पनाओं तथा भाषा और शैली के रूप में जिस प्रकृति को लेकर व्यक्त हुआ है, उससे अवगत होना भी आज के कवि के लिए आवश्यक हो जाता है। डा0 भारती का यह कथन कि 'क्या कारण है कि एजरा पाउण्ड से बोरिस पेस्तरनाक तक किन्हीं विशेष स्थितियों में अनुवाद कार्य की ओर झुकते देख पड़ते हैं।'[2] वस्तुतः इसी तथ्य की ओर संकेत करता है।

इसी प्रकार उन्होंने अनुवाद को काव्य के अभ्यास का एक आवश्यक अंग माना है। मध्ययुग में कवि-कर्म का महत्वपूर्ण अंग गुरु-शिष्य परम्परा का था। गुरु के निर्देशन में रहकर शिष्य अपने लेखन का संशोधन करता था। जबकि आज की स्थितियों में 'निगुरा' रहकर काव्य के क्षेत्र में प्रवृत्त होने को गर्व की वस्तु माना गया। डा0 भारती ने इसके विपरीत निर्देश, अनुशासन और अभ्यास की आवश्यकता की पूर्ति के रूप में अनुवाद को एक महत्वपूर्ण माध्यम माना है। इसके अभ्यास से कवि न केवल अपनी अभिव्यक्ति को समृद्ध बनाता है वरन् अपनी प्रकृति के अनुकूल काव्य-कृतियों को भी खोज निकालता है। डा0 भारती ने उक्त काव्यानुवाद के अभ्यास द्वारा साध्य खोज को 'समानधर्मा' की खोज कहा है' यह समान धर्मी कृतित्व खोजता है, वह एक कवि में मिले या कई कवियों में, एक भाषा में मिले या कई भाषाओं में, एक काव्य धारा में मिले या कई काव्यधाराओं में।'[3] इस दृष्टि से डा0 भारती ने काव्य के

---

1- वही- पृ0 7

2- वही- पृ0 7

3- वही- पृ0 9

अनुवाद का क्या महत्व एवं उद्देश्य होता है के मर्म या हेतु को उद्घाटित किया है। कहना न होगा कि समानधर्मी कृतित्व की तथाकथित खोज के उद्देश्य से ही प्रेरित होकर डा0 भारती ने विभिन्न देशीय कवियों की कविताओं का अनुवाद 'देशान्तर' के नाम से किया है। प्राय: उक्त अनुवाद भी 'स्वान्त सुखाय' की दृष्टि से ही किया गया है इसकी पुष्टि स्वयं उन्हीं के शब्दों में 'इन अनुवादों को प्रस्तुत करते समय स्वयं इन महान कवियों की वाणी में डूबने की जो सुखद अनुभूति मिली है, जिस प्रकार कभी-कभी मेरे अन्दर कहीं कुछ जो बन्द था खुलता हुआ लगा है, जिस प्रकार मुझे आत्मीयता और समानधर्मी तत्व मिले हैं उनके लिए मेरा मन आदर और आभार से नत है।"[1]

अनुवादक डा0 भारती ने 'देशान्तर' में पश्चिम के ऐसे कवियों की कविताओं का अनुवाद किया है जो आधुनिक काव्य-बोध के स्तर पर विभिन्न काव्यान्दोलनों के प्रवर्तक या नयी काव्य शैलियों रूपों और प्रवृत्तियों के समर्थ प्रयोक्ता रहे हैं। उन कवियों की कविताओं का अनुवाद भी किया है जिन्होंने परम्परागत काव्य रूपों का नवीन सन्दर्भों में प्रयोग किया। इनमें कुछ ऐसे कवि भी हैं जिन्होंने तानाशाही का अत्यन्त उग्र विरोध करते हुए मानवीय स्थिति के उज्ज्वल भविष्य में अदम्य आस्था को स्वर प्रदान किया। इसी प्रकार वे भी कवि अनूदित हुए हैं जो मार्क्सवादी, अतियथार्थवादी, स्वच्छन्दतावादी, प्रतीकवादी, प्रभाववादी, अस्तित्ववादी, बिम्बवादी, तथा रूमानी प्रवृत्तियों से प्रभावित रहे हैं। अनुवादक भारती ने इनके अनुवाद द्वारा समानधर्मी कृतित्व को आत्मसात् करने का प्रयास किया है।

कुछ पदांश तो ऐसे हैं जिनसे डा0 भारती के अपने रंग और ढंग की अहम्मियत

---

1- वही- पृ0 9

को सहज में ही देखते बनता है । उदाहरण के रूप में तुम्हारी हल्की-सी निगाह मुझे आसानी से खोल देती है (कमिंग्ज), 'जहां हम जाते हैं वहीं विवेक है' (केनेथ) 'हम मांसपेशियों की निर्माण शक्ति--- और हृदयों के स्नेहमय भाईचारे के गीत गायेंगे (रेजिनो पेद्रोसो), 'जब मेरा अस्तित्व न रहेगा, प्रभु, तब तुम क्या करोगे ?' (रेनर मरिया रिल्के), 'यह गलत है कि धरती को। शेषनाग को अपने माथे पर धारण कर रखा है । धरती यह समूची धरती। तुम्हारे इन्हीं हाथों पर टिकी हुई है ।' (नाजिम हिकमत) जैसे विचारांश, 'वह लपटों का ब्लाउज पहने थी' (विन्सेन्त यूदोबारो), 'तूतिया की तरह नीला आसमान' (कार्लोस द्रमन्द अन्द्रान्दे) 'प्यार हमारे बीच में उगा । जैसे चांद। दो ताड़ वृक्षों के बीच । जो कभी आलिंगन में बंधे नहीं । (मिगुएल हर्नान्देज), 'मैंने तुम्हारे शरीर के संगीत की सबसे परिपक्व।उठान को चिन्हित कर दिया-(एंगेल मीगेल केरमेल) जैसी रूमानी कल्पनाएं कितनी ताजी लगती हैं ।

'देशान्तर' के प्रस्तुत अनुवाद जहां एक ओर मूल रचना के सम्पूर्ण सौष्ठव को बनाये रखते हैं वहीं दूसरी ओर वे हिन्दी के अपने लगते हैं । यदि पाठक को यह पता न हो कि वे अनूदित रचनाएं हैं तो वह उन्हें निस्संदेह भारती की अपनी रचनाएं मानने का भ्रम होगा- इसका एक उदाहरण देखिए -

'रोशनी मकड़ी है। जल पर रेंगती है। बर्फ के किनारों पर। तुम्हारी पलकों के तले। और वहां अपना जाला बुनती है। अपने दो जाले। (पृ09-गोदना)इसका अंग्रेजी रूप :

The light is like a spider.
It crawls over the water.
It crawls over the edges of the snow.
It crawls under yours eyelids
And spreads its webs there-
It two webs (tattoo)

उपर्युक्त उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि डा0 भारती ने मूल कृति के भाव, कल्पना और अभिव्यंजना के रसायण को अपने अनुवाद द्वारा बड़ी क्षमता-कुशलता के साथ आत्मसात कर लिया है।

उक्त प्रस्तुत अनुवादों में डा0 भारती के सही शब्दों, मुहावरों, बिम्बों तथा प्रतीकों का यथावत प्रयोग करके मूल भावों को अधिकाधिक प्रेषणीय बनाने की भरसक कोशिश की है। छंद की दृष्टि से अतुकान्त या मुक्त-छंद शैली का सर्वत्र प्रयोग किया गया है। तात्पर्य यह है कि भाषा मूल भावों और विचारों को अभिव्यक्त करने में कहीं भी दुरूह और अस्पष्ट प्रतीत नहीं होती। डा0 भारती के अनुवादों की इसी सफलता को लक्षित करते हुए श्याम परमार ने कहा है "मुझे लगता है अनुवाद के दौर में भारती को कहीं एजरा पाउण्ड होना पड़ा है, तो कहीं लारेंस, कहीं वह अर्जेन्टाइना के कवि एरियेटा के साथ 'शरद की रात' में किसी के साथ हैं तो कहीं कोरदिो के साथ 'नौका बिहार' में। उसे दूसरों के 'नील मकान', 'आंगन', 'बकरियाँ', 'मेरे मित्र, मेरी बहनें', 'दर्पण का धर्म', 'प्राचीन मिश्र की एक आदिम जाति का गीत', 'निग्रो और नदियाँ', 'खिड़की पर सुबह' आदि सब कुछ अपने लगते हैं। --- डा0 भारती ने अनुवाद के प्रति उस हद तक स्वच्छन्दता नहीं बरती कि इतालवी कहावत के अनुसार उन्हें द्रोही माना जाये या क्रोशे के शब्दों में अनुवादक को मूल रचयिता के व्यक्तित्व को उद्ध्वस्त या खंडित करने का भागी समझा जाय।"[1]

**(2) आस्कर वाइल्ड की कहानियाँ :**

प्रस्तुत कहानी संग्रह में आस्कर वाइल्ड की आठ कहानियाँ 'शिशु देवता', 'अभिषेक', 'तारा-शिशु', 'मूर्ति और मनुष्य', 'नि:स्वार्थ मित्रता', 'इन्फैण्टा का

---

1- धर्मवीर भारती - सं0 लक्ष्मण गौतम- पृ0 111

जन्मदिन', 'एक लाल गुलाब की कीमत', तथा 'नाविक और उसका अन्तःकरण' जैसे शीर्षकों के अन्तर्गत डा० भारती द्वारा अनूदित की गई हैं।

जिस 'समानधर्मी कृतित्व' एवं आधुनिक काव्य-बोध को काव्यानुवाद द्वारा खोज निकालने की प्रेरणा एवं जिजीविषा ने डा० भारती से पश्चिम के इक्कीस देशों की आधुनिक कविताओं का 'देशान्तर' नाम से अनुवाद कराया, ठीक उसी प्रेरणा और आशय से अभिभूत होकर डा० भारती ने आस्कर वाइल्ड की कहानियों का अनुवाद किया है। अंग्रेजी साहित्य में आस्कर वाइल्ड का लेखन जितना विवादास्पद रहा है उतना ही उसका व्यक्तित्व भी। उसके साहित्यिक महत्त्व की ओर संकेत करते हुए डा० भारती लिखते हैं - 'अंग्रेजी गद्य के अनुपम शैलीकार के रूप में उसे सभी ने मान्यता दी है। शिल्पसज्जा, शब्दचयन, चमत्कारपूर्ण अभिव्यक्ति और भाषा-प्रवाह के लिए आज भी उसका लेखन अद्वितीय माना जाता है। उसकी कथाएं अपने ढंग की अनूठी हैं।'[1] अपने किशोर काल से ही डा० भारती शेले, टामस हार्डी, प्रसाद, शरत और आस्कर वाइल्ड की कहानियों से अत्यधिक प्रभावित रहे हैं। किन्तु विशेषकर आस्कर वाइल्ड की कहानियों के प्रभाव को तो भाषा, शैली, भाव एवं कल्पना के स्तर पर उनकी अधिकतर कहानियों में देखा जा सकता है। इस दृष्टि से डा० भारती की 'कमल और मुर्दे', 'कला : एक मृत्यु चिन्ह', 'पूजा' तथा 'तारा और किरण' कहानियां विशेष उल्लेखनीय हैं। इन कहानियों की रूमानी रुझान वाली स्वच्छंद कल्पनाएं, और भाषा-शैली तथा सौन्दर्यवादी दृष्टि आस्कर वाइल्ड की कहानियों की याद करा देती हैं। आस्कर वाइल्ड ने आंधी, चिड़िया, मूर्ति, आदि जैसे प्राकृतिक और जड़ पात्रों से सम्भाषण करवाया है। डा० भारती ने भी कली, हवा, स्यार, और चांद जैसे प्राकृतिक पात्रों को बातचीत करते दिखाया है।

---

1- डा० भारती - आस्कर वाइल्ड की कहानियां (द्वितीयावृत्ति 1960) परिचय पृष्ठ

जहां तक आस्कर वाइल्ड की कहानियों के अनुवाद में मूल रूप के भाव एवं भाषा सौष्ठव के रूपान्तर का प्रश्न है, डा0 भारती ने अनुवाद के विवेक की बड़ी सावधानी से रक्षा की है। गद्यानुवाद के सम्बंध में डा0 कैलाश वाजपेयी का मत है - "कविता में तो भावार्थ तक पहुंचने के लिए अनुवादक थोड़ी बहुत सर्जनात्मक स्वतंत्रता भी ले सकता है जबकि गद्य में उसे मूल कृति के अधीन रहना पड़ता है।"[1] तात्पर्य यह है कि गद्य के अनुवाद में लेखक को मूल कृतिकार ने अपने मत या भाव प्रतिपादन के लिए जिस शैली विशेष के ढंग का अनुगमन किया है उसकी सुरक्षा का भी ख्याल रखना पड़ता है। अन्यथा इसके अभाव में भावानुवाद की शैली में वह सजीवता नहीं आ सकती जो मूल कृति में होती है। किन्तु श्रेष्ठ अनुवादक भाव सम्प्रेषण की विशिष्ट शैली प्रयोग के द्वारा मूल भावों के यथावत रूप को अपने अनुवाद में उतार सकता है। कहना न होगा कि प्रस्तुत अनूदित कहानियों में डा0 भारती ने अनुवाद की सजीवता और लालित्य सौष्ठव के विवेक का पूरा ख्याल रखा है। कहानियों के पढ़ते समय पाठक को वह रसास्वादन मिलता है जो मूल कहानियों के पढ़ने पर मिल सकता है। उदाहरण के लिए देखिए- "एक बार एक फूल ने घास से सर निकाल कर ऊपर झांका, किन्तु जबउसने वह तख्ती देखी तो उसे इतना दु:ख हुआ कि वह शबनम के आंसुओं से रोता हुआ फिर जमीन में सोने चला गया।"[2]

## निष्कर्ष :

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि डा0 भारती के अनुवाद सुंदर और विश्वसनीय तो हैं हीसाथ ही वे हिन्दी की अपनी छाया के रूप में भी अपना स्वतंत्र महत्त्व रखते हैं। अनुवादक डा0 भारती ने मूलकृतिकारों के कृतित्व एवं उनके व्यक्तित्व से घनिष्ट आत्मीयता स्थापित करते हुए हिन्दी को जो अपना अनूदित साहित्य दिया है वह वास्तव में हिन्दी की अपनी उपलब्धि है।

---

1- हिन्दी वार्षिकी : 1961 : पृ0 152

2- डा0 भारती- आस्कर वाइल्ड की कहानियां, 'शिशु देवता', पृ0 16